श्री डुंगजिया सरदार जैन ग्रन्थमाला पुष्प नं ४

ॐ

जैन तत्त्व का नूतन निरूपण



सम्पादक और अनुवादक—
धीरजलाल के० तुरखिया
श्री अधिष्ठाता, श्री गुरुकुल ब्यावर

प्रकाशक—
श्री डुँगजिया सरदार जैन ग्रन्थमाला
इतवारी बाजार, नागपुर

प्रथमावृत्ति
प्रति १०००

वीर संवत् २४६४
विक्रम सं० १९९४

समर्पण



आचार्य श्री होते हुए जो विनय विभूति हैं।
पूज्य श्री होते हुए जो प्रभुता से पर हैं॥
शिरोमणी होते हुए जो सब के सेवक हैं।
गुरुवर्य होते हुए जो शिष्य के भी शिष्य हैं॥
ज्ञान मूर्ति होते हुए जो नम्रता की मूर्ति हैं।
तपो मूर्ति होते हुए जो क्षमा के अवतार हैं॥

तिन

परम करुणासागर, दयाहृदय, जैनाचार्य, यशोधनी, तपस्वीरत्न, तपोमूर्ति

पूज्य श्री १००८ श्री देवजी ऋषिजी महाराज श्रीजी की

पुनीत सेवा में त्रिकाल वंदन !

श्रीजी के प्रभावक प्रवचनों से पुनीत, पुण्य प्रभावक,

श्रावक शिरोमणी, गुरुभक्त,

दानवीर श्री सरदारमलजी पुंगलिया (नागपुर) की प्रेरणा से

श्रीजी की शुभ छाया में

प्रथित आगम-वाटिका के पुष्पों की माला स्वरूप

यह सेवक की पामर भक्ति रूप लघु पुस्तिका।

सविनय समर्पण



महावीर भवन, नागपुर] —लेखक



दानवीर

श्रीमान् सेठ नेमीचदजी सरदारमलजी पुंगलिय

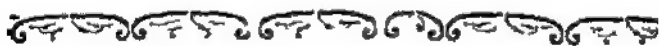
की

अ० सौ० धर्मप्रेमी श्रीमती मगनदेवी की तरफ से

अपनी स्वर्गीया पुत्री

श्री जमनाबाई की पुण्य स्मृति में

सादर सप्रेम भेंट ।



रुपया सवा लाख जितना दान करने वाले
दानवीर सेठ मरलमनजी साहब पुङ्गलिया (नागपुर)



आपने श्री जैन गुरुकुल, ब्यावर का देवभवन निर्माण हेतु
१८०००) रुपये की उदार भेंट जाहिर की है।

दानवीर श्रीमान्

सेठ श्री सरदारमलजी पुगलिया

का

संक्षिप्त परिचय

विश्व अनाम और अनादि है। उसमें अनगिनते मनुष्य प्राणी समय २ पर जन्म धारण करते रहते हैं, मगर बहुत कम को छोड़ कर अधिकांश मनुष्य प्राप्त हुए सर्वोत्कृष्ट मानव जीवन को उस जीवन की रक्षा में ही व्यतीत कर देते हैं। वे जीवन रूपी पूंजी को जरा भी नहीं बढ़ाते, बल्कि उस पूंजी का उपयोग कर के अगले जीवन को और अधिक दरिद्र बना देते हैं। कई प्राणी अपनी निज शक्तियों का उल्टा उपयोग कर के सर्वश्रेष्ठ मानव जीवन को सब निकृष्ट जीवन बना डालते हैं। इनके जीवन का मुख्य ध्येय सांसारिक आमोद प्रमादों का अधिक से अधिक प्राप्त करना होता है। और वे व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ती में ही संलग्न रहते हैं। ऐसे मनुष्यों का जीवन या तो निष्फल हो जाता है या विपरीत फलदायी सिद्ध होता है। समाज देश या संसार की उपयोगिता की दृष्टि से उनका अस्तित्व नहीं के समान है।

इससे विपरीत कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं, जो परलोक से एक अच्छी पूंजी लेकर आते हैं और इस लोक में अपने सदनुष्ठानों के द्वारा धर्म और समाज की बहुमूल्य सेवा कर के परोपकार में अपनी समस्त शक्तियों का व्यय कर के, सब प्रकार से अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं से विमुख होकर समाज और [illegible] आवश्यकताओं की पूर्ती को ही सदा

रखते हैं। ऐसे महानुभावों का जीवन धारण करना साधक होता है और वे प्राप्त पूंजी अधिक बढ़ाते हैं।

इन पंक्तियों में जिनके जीवन की रूप रेखा अङ्कित करने का प्रयत्न किया जा रहा है, वे दूसरी श्रेणी के महानुभावों में अग्रगण्य धर्मपरायण पुरुष हैं। जैन समाज में और विशेषतः स्थानकवासी समाज में सेठ मेरदानमलजी पुगलिया से कौन अपरिचित है? सेठ साहब का अन्तःकरण आकाश की तरह विशाल, हिमकी भांति स्वच्छ और अमृत पद की नाई उदार है। आपके विद्या प्रेम के ज्वलन्त प्रमाण स्थानकवासी सम्प्रदाय में यत्र तत्र सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसे विद्यारसिक और दानवीर सज्जन का जीवन चरित्र श्रीमानों के लिये एक अच्छा आदर्श है और इसलिये उसे यहाँ अंकित करने का प्रयत्न किया गया है।

हमारे चरित्र नायक के पूर्वजों का मूल निवास स्थान बीकानेर है। बीकानेर में आपके पूर्वजों की बड़ी प्रतिष्ठा थी। आपका परिवार वहां के उंगलियों पर गिने जाने वाले प्रतिष्ठित परिवारों में से एक था। सुनते हैं बीकानेर शहर में जब अनेक धन कुबेरों के होते हुए भी किसी के यहां भी तांगा न था तब सबसे प्रथम आपके पूर्वजों ने तांगा लाकर मुसाफिरी की सुविधा का मार्ग सबके सामने प्रकट किया था। बीकानेर में आज भी पुगलियों का विशाल प्रासाद अपना मस्तक ऊंचा किये खड़ा है और आपके परिवार की कीर्ति का परिचय करा रहा है। परन्तु व्यापारिक कारणों से आपके पूर्वज मध्य प्रान्त के मुख्य नगर नागपुर में आ बसे और वहीं हमारे चरित्रनायकजी का जन्म हुआ। आपका जन्म दिवस भी वही है जो श्री जैन गुरुकुल व्यावर के अष्टम वार्षिक महोत्सव का जिसके आप माननीय प्रमुख निर्वाचित किये गये थे। आपके पधारने की पूर्ण अभिलाषा होने पर भी, दुर्भाग्य से आपकी सुपुत्री का अवसान होजाने से नहीं पधार सके। विक्रम सम्वत् १९४४ की मार्गशीर्ष शुक्ला १० को आपने अपने पुण्य जन्म से अपने कुटुम्ब को आमोदित किया था।

आरम्भ से ही आप कुशाग्र बुद्धि थे। तत्कालीन वातावरण के अनुसार आपकी शिक्षा-दीक्षा सम्पन्न हुई और तदनंतर आपने अपना परम्परागत व्यवसाय में पड़ जाने पर भी अन्य क्षेत्रों से सर्वथा उदासीन न रह और सच्चे श्रावक की भांति अपना जीवन यापन कर रहे हैं। ऐसे सच्चे जैन श्रावक का यह कर्तव्य होता है, कि वह परस्पर विरुद्ध रूप से धर्म अर्थ और काम पुरुषार्थ का सेवन करे। जो इस प्रकार का अपना जीवन बना लेता है, वह क्रमशः चतुर्थ पुरुषार्थ (मोक्ष) को भी प्राप्त कर लेता है। श्री पुंगलियाजी में यह वास्तविकता भली भांति देखी जाती है। व धनोपार्जन करते अवश्य है पर शुद्ध संग्रह शील नहीं। दान देने में उनका हाथ कभी कुंठित नहीं होता। दीन-हीन की सेवा, समाज का विधवा बहिनों की गुप्त सहायता, शिक्षा संस्था और साहित्य प्रकाशन के लिये दान देना आपका व्यसन सा होगया है। आप द्वारा दान दी गई रकम का ठीक ठीक पता नहीं लग सकता। आपका दान कीर्ति की कामना से नहीं, बल्कि शुद्ध कर्तव्य पालन के उद्देश्य से होता है। अतएव आप बहुतसी रकमें गुप्त रूप से ही प्रदान करते हैं। उन रकमों का पता पुंगलियाजी के समीपवर्ती उनके प्राइवेट सेक्रेटरी तक को नहीं है। ऐसी हालत में उनके दान का ठीक अंदाज ही नहीं लगाया जा सकता।

स्थानकवासी सम्प्रदाय का मूल आधार मुनिराज हैं। वही सम्प्रदाय के रक्षक, विकासक और धर्मोपदेशक हैं। मुनिराजों की शिक्षा पर समस्त सम्प्रदाय की शिक्षा निर्भर है। अतएव मुनिराजों का उच्चातिउच्च शिक्षा का साज देना मानों वृक्षों के मूल को सींचना है। मूल का सींचन से सारा दरख्त आप ही आप सिंच जाता है, इसी प्रकार मुनिराजों की शिक्षा से सारा सम्प्रदाय सुशिक्षित होता है। इस तथ्य को श्री पुंगलिया जी भली भांति समझते हैं और इसी कारण आप मुनिराजों की शिक्षा पर खासी रकम खरचते हैं।

साधर्मी भाइयों के प्रति आपका अनुपम वात्सल्यभाव है। उन्हें हर

प्रकार से सहायता पहुचाना आप अपना कर्तव्य समझते हैं। अनेकों भाइयों को आपने अपनी उदारता का परिचय दिया है। जिनके मकान न थे उन्हें मकान दान दिया। जो अर्थाभाव के कारण अपनी संतान का विवाह न कर सकते थे, उन्हें यथोचित सहायता पहुंचाई। नागपुर विश्व विद्यालय में भी आपने अच्छी रकम प्रदान की है।

आपने मामली में सुसेड़ा में रतलाम (नीम चौक तथा साहू बाजार) के दो स्थानक आदि का जीर्णोद्धार कराया तथा धर्म स्थानक के लिए नए मकान दिलाए। नागपुर इतवारी का विशाल धर्म स्थानक और व्यायामशाला बनवाने में भी आपका बड़ा हिस्सा है। प्रायः भारत की कोई भी जैन संस्था ऐसी न होगी, जिसमें श्री कुँदनमलजी का दान न पहुँचा हो। आपका प्रकट दान जितना ज्ञात हो सकता है उससे मालूम होता है कि आपने एक लाख रुपयों से भी अधिक दान दिया है।

साहित्य प्रकाशन के लिये आपने रुपये १००००) निकाले हैं जिसमें से श्री सरदार ग्रंथमाला' चल रही है। इसी समय आपने अपने श्रद्धेय तपोधनी पूज्य श्री देवजी ऋषिजी के नाम से देव भवन निर्माण करने के लिए श्री जैन गुरुकुल ब्यावर को १८०००) रुपए की उदार रकम जाहिर की है।

आपके गुप्त दान की तो कोई गिनती ही नहीं है।

आपकी दानशीलता का प्रभाव आपके सारे कुटुम्ब पर पड़ा है। यही कारण है कि आपकी धर्मपत्नी भी दान देने में शूरा है। ब्यावर गुरुकुल को दी हुई १८ ०) की रकम आप ही की है। इसके अतिरिक्त बहुत सा गुप्त दान दिया है। आपकी सुपुत्री स्व० मूलीबाई ने भी रु० ५०००) धर्मार्थ प्रदान किये हैं। अभी ही आपने रु० १५००) की कीमत का भवन अपनी स्व० पुत्री जमनाबाई के नाम पर नागपुर श्री संघ को अर्पण किया है।

सच तो यह है कि स्थानकवासी सम्प्रदाय में आपकी कोटि के उदार

कम व्यक्ति दानवीर समान बहुत नहीं है। आपका दान विवेकयुक्त और समयानुकूल होता है। शिक्षा प्रेम आपकी नस-नस में कूट कूट कर भरा हुआ है। हमें ऐसे धर्मपरायण पुरुष रत्न पर पूर्ण गौरव है। और शासन देव से प्रार्थना है कि यह अभिमान चिरकाल तक इसी प्रकार कायम रहे।

आपकी धर्म भावना, उदारता, सरलता, निरभिमानता, स्वधर्म सेवा, पंथ दानवीरता स्थान-स्थान विहार सा० पा० आदि प्रान्तों में प्रसिद्ध है। नागपुर में मुनिवरों के चातुर्मास होने में आपकी दृढ़ भावना और मुनि भक्ति प्रधान है। नागपुर भी आपकी धर्म भावना के कारण ही सविशेष प्रसिद्ध हुआ है। आप में ऐसे सम्यक्त्व के सुसंस्कार परम प्रतापी, तपोधनी तपस्वी देव पूज्य श्री १००८ श्री देवजी स्वामीजी म० सा० के धर्मोपदेश व परिचय से सुदृढ़ हुए हैं। श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्थानकवासी आदि सब जैन समाज आपको सम्मान दृष्टि से देखता है। आपकी लोकप्रियता नागपुर में ही नहीं परन्तु मध्यप्रदेश से दूर दूर फैल रही है। जैन संसार में इतनी लोकप्रियता प्राप्त करने वाले बहुत कम होंगे।

— — —

श्री० दानवीर पुगलियाजी की सुपुत्री



स्वर्गीया जमनाबाई, नागपुर



श्री० पुगलियाजी के नेक सलाहकार



प्राइवेट सेक्रेटरी श्री० मूलजीभाई शाह

श्री० पुंगलियाजी की सुपुत्री की अमर यादगार








श्री० जमनाबाईं पुगलिया भवन, नागपुर

प्रस्तावना

जैनाचार्य आगमोद्धारक पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी म० कृत 'जैन तत्त्व प्रकाश' के गुजराती अनुवाद के लिये मौलिक विज्ञान की दृष्टि से इस ग्रन्थ में के विषयों का नोट रूप में कुछ संग्रह किया था किन्तु गुजराती में इस ग्रन्थ का अनुवाद न हो सकने से इस ग्रन्थ के लिये लिखी हुई तात्त्विक नोट्स् जैन प्रकाश को दी गई। प्रकाश पत्र ने इस तात्त्विक विभाग को प्रकाशित किया। इस विभाग को पुस्तकाकार रूप में देखने की गुजराती और हिंदी पाठकों की भावना जागृत होने से जैन समाज के दानवीर श्रीमान् सरदारमलजी पुगलिया की आर्थिक सहायता से यह पुस्तक हिन्दी में आपके सामने उपस्थित हो सकी है।

यह संग्रह अनेक महापुरुषों के आदर्श ग्रन्थ रत्नों का सार रूप है। इससे जो ज्ञानप्रसार हो उसका यश और पुण्य के भागीदार मूल ग्रन्थ के लेखक और प्रकाशक महात्मन् और महाशय है। त्रुटियों के लिये सम्पादक शुद्धि के पात्र है। तदपि आशा है कि श्रद्धालु, लगनशील विद्यार्थीगण और जिज्ञासु भव्य आत्माओं की यह पुस्तक किंचित् सेवा कर सकेगी। ऐसा अन्तर विश्वास होने से सम्पादक को सन्तोष है। ॥ ॐ शान्ति शान्ति ॥

ता० १-८-३७ रविप्रभात ७ ३० } श्री महावीर भुवन, नागपुर

विषय सूची

धर्म-विभाग

प्रकरण	विषय	पृष्ठ	प्रकरण	विषय	पृष्ठ
१	धर्म	१	८	ज्ञान दान	२२
२	धर्म की परीक्षा	२	९	परोपकार	२३
३	धर्म रहित भिक्षुक	६	१०	भावना	२५
४	मानव मन	१२	११	भोग	२६
५	मनुष्यत्व	१५	१२	राग	२८
६	सत्य श्रीमन्ताई	१७	१३	उपवास	३०
[illegible]	दान	१९	१४	धर्मोपदेश	३२

मार्गानुसारी-विभाग

१	गुणदृष्टि	३४	४	निन्दा और निन्दक	४२
२	लघुता	४०	५	वन्दक	४५
३	गुरुता	४१	६	कर्तव्य प्रकाश	४६

संसार-स्वरूप

१	संसारासक्त जीवों की मनोदशा	५४	६	मृत्यु	७०
२	दोष दृष्टि	५७	७	आज का मानस	७३
३	संसार-शराबखाना	६१	८	जड़वादी आत्माओं का स्वरूप	७६
४	छः प्रकार के जीव	६४			
५	छः काय सिद्धि	६७	९	नारकीय यातना	७९

तत्त्व-विभाग

१	नवतत्वों का स्वरूप	८२	१३	विषय कषाय	१२८
२	मिथ्यात्व	९२	१४	कषाय	१३६
३	अविरति	९४	१५	चारकषायरूपसर्प	१३८
४	प्रमाद	९७	१६	क्रोध क्षमा	१३९
५	ज्ञान व समकित	९९	१७	मान विनय	१४४
६	पंच महाव्रत	१०१	१८	माया	१४६
७	मौन	१०६	१९	काम	१४८
८	कर्म	१०७	२०	आत्म संयम	१४०
९	वेदनीय	११५	२१	मन प्रत्याख्यान	१५०
१०	मोहनीय	११७	२२	चारित्र	१५४
११	योग	१२१	२३	आत्म संयम	१५६
१२	मन वचन काया	१२५	२४	जैनधर्म व अजैन संसार	१५७



जैनतत्त्व का नूतन निरूपण

धर्म-विभाग

१—धर्म

इस शरीर को निभाने में जिस प्रकार अन्न, जल एवं प्राण वायु की आवश्यकता उत्तरोत्तर अधिक रूप से रहती है उसी प्रकार प्राणवायु से भी अनन्त गुण अधिक आवश्यकता धर्मतत्त्व की है। धर्म की अनुपस्थिति में समय मात्र भी शरीर का जीवित रहना सर्वथा असम्भव है। आत्म रहित शरीर द्रव्य मुर्दा है व धर्म रहित शरीर भाव मुर्दा है। द्रव्य मुर्दे की अपेक्षा भाव मुर्दा विशेष भयंकर है। द्रव्य मुर्दा द्रव्य अग्नि से जलता है और भाव मुर्दा भाव अग्नि से। (रात्रि दिवस रूप अग्नि है) द्रव्य मुर्दे से द्रव्य दुर्गंध निकलती है उसी प्रकार धर्म रहित भाव मुर्दे से विषय कषाय रूप भाव दुर्गंध निकलती है। द्रव्य मुर्दे में द्रव्य कीड़े उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार भाव मुर्दे में भाव कीड़े—ईर्षा, निन्दा, द्वेष, कलह, घृणा, मत्सर, अहंभाव, तृष्णा एवं ममत्व रूप कीड़े प्रति समय [illegible] रहते हैं।

समस्त विश्व, धर्म के ऊपर ही अवलम्बित है। पशुओं में सततिरक्षा का धर्म है पक्षी व विकलेंद्रिय में अण्डों की रक्षा का धर्म है। जंगली मनुष्यों में कुटुम्ब रक्षा रूप धर्म है। राज्य समाज एवं जाति का नियमन भी धर्म पर निर्भर है। धर्म के अभाव से सर्व व्यवस्था नष्ट होकर मानव ससार पशु ससार से भी अधिक बदतर, क्षुद्र एवं भयप्रद बनजाता है। अतएव विश्व के समस्त व्यवहार में धर्म ही ओत प्रोत हो रहा है।

पवित्र आचार, पवित्र विचार एवं पवित्र अतःकरण रूप त्रियों के संगम होने से धर्म तीर्थ की प्राप्ति हो सकती है।

धर्म की परीक्षा

समस्त समाज के मनुष्य निज २ को धर्मात्मा कहलाने में गौरव लेते हैं उन महानुभावों को निम्न प्रश्नों का विचार कर उत्तर देना चाहिये।

परोपकारिणी संस्थाएं आपके समाज में हैं कि अन्यधर्मियों में ?

दान का सद्गुण आप में अधिक है कि अन्यधर्मियों में ?

फिजूलखर्ची एवं विलास के साधनों की निपुणता आप में है कि अन्यधर्मियों में ?

महारम्भी यन्त्रवाली व्यापारों को उत्तेजन देने वाले आप हैं कि अन्य ?

हिंसक पदार्थों का व्योपार व व्यवहार आप में विशेष है कि अन्य में ?

वस्त्राभूषण व बाह्याडम्बर का मोह आप में अधिक है कि अन्यमें ?

कचहरियों के द्वारों को आप खटखटाते हैं कि अन्य ?

धन लोभ से प्रेरित होकर समुद्र पार के देशों में आप घूमते हैं कि अन्य ?

सत्य नीति एवं न्याय आप में है कि अन्य में ?

धार्मिक नियमों का पालन आप अधिक करते हैं कि अन्य ?

धार्मिक पर्व एवं धर्म गुरुओं को विशेष आदर आप देते हैं कि अन्य ?

धार्मिक मर्यादा में रहने वाले आप हैं कि अन्य ?

धार्मिक झगड़े (साम्प्रदायिक कलह) आप में अधिक है कि अन्य में ?

उपर्युक्त प्रश्नों के सन्तोषजनक प्रत्युत्तर देने में समर्थ समाज के मनुष्यों में ही धर्मतत्त्व की उपस्थिति है। फिर चाहे वे मनुष्य किसी भी जाति के या किसी भी देश के हों। और अपने धर्म का नाम भी चाहे सो रखते हों। वास्तव में वे ही शुद्ध धार्मिक आर्य एवं आस्तिक हैं मोक्ष के पथ में स्थित हैं। इससे अतिरिक्त समाज पवित्र देश जाति व धर्म की बाह्य छाप लगाये हुए भी अधार्मिक अनार्य एवं नास्तिक है।

जाति भोज के समय पर मिष्टान्न उड़ाने का व मनोहर वस्त्राभूषणों को परिधान करने का तीव्र भाव उत्पन्न होता है वैसा ही तीव्र भाव धर्म क्रिया में कभी प्रादुर्भूत होता है क्या ?

तीव्र जिज्ञासा के बिना धन भी नहीं मिलता है तो फिर धर्म जैसी अमूल्य चीज कैसे मिले ?

लाख रुपये का मुनाफा व घाटा आपके हृदय पर हर्ष विषाद का जो असर उपजाता है वही असर आस्तिकों को धर्म के संयोग वियोग से होता है। किन्तु वर्तमान मानव समाज ने तो विषय कषाय के साथ पाणिग्रहण कर लिया है और धर्म तत्त्व के विषय में विधुरावस्था में है। मनुष्यों का मनुष्यत्व धर्म तत्त्व में रहा हुआ है।

जंगली प्रदेश में जवाहिरात का मूल्य नहीं है वैसे ही जड़-वाद के जमाने में धर्म तत्त्व का मूल्य नहीं हो सकता। मनुष्य सुख की इच्छा करते हैं, परन्तु सुख के उपादान कारण रूप धर्म की अवहेलना करते हैं। कैसी आश्चर्य जनक घटना है!!

बिना स्वार्थत्याग के धर्म की आराधना कभी नहीं हो सकती। संसार में अपना सर्वस्व देकर धर्म आराधना करने वाला सुसाध्य रोगी है। अनुकूलतानुसार धर्माराधन करने वाला कष्टसाध्य रोगी है और लोक व्यवहार से धर्म आराधना करने वाला असाध्य रोगी है।

धर्म के अभाव से मोहरूप उन्माद का रोग, राग रूप ज्वरका रोग, द्वेषरूप शूलरोग, विषयकषायरूप खुजली का रोग, ईर्षा व निंदारूप रक्तपात का रोग अज्ञान रूप अंधत्व और प्रमादरूप जलोदर रोग इत्यादिक नानाविध रोग उत्पन्न होते हैं।

अगर धर्म के मिष्ट फल खाने को तत्पर हो तो बीज बोने में भी तत्पर हो जाओ। धन की अपेक्षा धर्म का विशेष आदर रखते रहो। धर्म के सत्यरूप समाज की सेवा करो।

समुद्र में रहा हुआ पत्थर ज्यों पानी से मृदु नहीं होता है वैसे आरम्भ परिग्रह में आसक्त जीव धर्मोपदेश से मृदु नहीं होता' ऐसा श्रीस्थानाङ्ग सूत्र में सरल का स्पष्ट कथन है।

धन के अभाव से इस जीव ने रो रो कर इतने अश्रु गिराये हैं कि जिस अश्रुओदधि में खुद आप ही अनन्तबार बह गया किन्तु धर्मतत्त्व के लिये अमृत तुल्य एक भी अश्रुबिन्दु कभी गिराया है क्या? स्त्री पुत्र एवं धन के लिये मनुष्य अश्रुपात करता है तो भी निराशा मिलती है तो जरा विचारिए कि धर्म के लिये कितने हार्दिक अश्रुप्रपात की आवश्यकता है? धन प्राप्ति के लिए जो पुरुषार्थ किया जाता है उससे लाखगुणा अधिक पुरुषार्थ करने से ही धर्म प्राप्ति हो सकती है। रोटी के टुकड़े के लिये रात दिन अविश्रांत परिश्रम करने पर भी पूर्ण प्राप्ति नहीं होती तो कम पुरुषार्थ से धर्म प्राप्ति कैसे हो सकती है? नादान लड़का जिस तरह बिस्कीट के लिए लाख रुपयों का हीरा दे देता है वैसे ही अज्ञानी जीव विषय विलास के साधनों की प्राप्ति के हेतु धर्मरूप हीरा व मानव भवरूप चिंतामणी रत्न मार डालता है।

धन के लिये जितनी व्याकुलता है उतनी ही व्याकुलता धर्म के लिये जागृत होवे तभी धर्म की प्राप्ति होती है। धार्मिक जीवन व्यवहार में कथानकरूप होना चाहिये।

वायु बह रहा हो तो फिर पंखे की कौन परवाह करे? सिर्फ रोगी। वैसे ही सुख के अभाव से रोग के समय में ही धर्म भावना के लिये धूमधाम मचाई जाती है।

स्वयं धर्म आराधना करे सो उत्तम।
प्रेरणा से करे सो मध्यम।
प्रेरणा से भी न करे सो अधम।

विषय कषाय की प्रवृत्ति ही धर्म से पराङ्मुख होने में कारणभूत होती है। धर्म के अभाव में ही मनुष्य में पाशविकता प्रकटती

है। धर्म का नियमन काल्पनिक नहीं किन्तु शाश्वत है। धर्मस्थान यह पूर्वाचार्यों का किया हुआ अद्भुत आविष्कार है। जितने अंशों में धार्मिकता का अभाव उतने ही अंशों में पाशविकता का प्राधान्य। जितने अंशों में धर्म भावना उतने ही अंशों में चैतन्य सत्व। पुण्यानुबन्धीपुण्य के उदय से ही धर्मतत्त्व की प्राप्ति होती है।

धर्म के बिना पुण्य नहीं और पुण्य के बिना शाता नहीं। समस्त सुखों का धाम व सुख की जड़ धर्म और सब दुःखों का धाम अधर्म है।

समुद्र को पार करने के लिये नौका का आविष्कार किया गया है उसी तरह संसार समुद्र में गिरने के लिये ज्ञानी पुरुषों ने धर्म रूप प्रवहण (नाव) का आविष्कार किया है। शुद्ध हवा के अभाव से रोग बढ़ता है वैसे ही धर्म के अभाव से आत्मा में पापरूप रोग बढ़ता है। निरक्षर (अनपढ़) के ज्ञान पोथी में लकीरें दिखाई देती है वैसे ही हीनपुण्यजीवों को धर्मतत्त्व निर्माल्य सा मालूम होता है।

धर्मतत्त्व के लिये देव भी सोच करते हैं, किन्तु अज्ञानी धर्म भावना का उपहास करते हैं।

मनुष्य की प्रत्येक प्रवृत्तियाँ—व्यौपार गुमास्ती दलाली आदि में केवल धन कमाने का ध्येय रहता है जैसे ही मनुष्यों की समस्त प्रवृत्तियों में धर्म का ध्येय होना चाहिए। अन्यथा बिना माल के थैले (बारदान) के समान मनुष्य की निर्माल्य स्थिति समझना चाहिये। मनुष्यों के चारित्र का विकाश करने की कला उसी के

नाम धर्म। धार्मिक जीवन ही नैसर्गिक जीवन है। पाप जीवन एवं निरर्थक है।

पशुगण अपने जीवन में शरमिन्दा नहीं होता वैसे ही धर्म रहित मनुष्य भी अपने जीवन में नहीं शरमाते। धर्मरहित मनुष्य केवल पशु भूमि को शोभाते हैं। अगर यों कहा जाय कि धर्महीन मनुष्यों का अधिकांश भाग पशुभूमि को भी लज्जित कर रहा है तो भी अत्युक्ति न होगी। मनुष्य जितने अंश से पशु जाति में है उतने अंशों में वह विषयकषायकी प्रवृत्तियों में लज्जित नहीं होता। जितने अंश में धार्मिकता का अभाव है उतने अंश में अपने अधम मय जीवन के लिए लज्जनीय पश्चात्ताप है।

जड़ एन्जिन में जिस प्रकार अग्नि एवं पानी की शक्ति काम कर रही है उसी प्रकार इस शरीर में शक्ति रूप धर्म व पुण्य है धर्म को आदर दिया या नहीं किन्तु वह हमारे हर एक श्वासोच्छ्वास में सहायक है। बिना धर्म के मनुष्य का मूल्य मांस के पिण्ड से अधिक नहीं है। धर्म के ही प्रभाव में मांस का यह लोथा पृथ्वी पर गिर पड़ेगा।

धर्मतत्त्व पशुओं में नहीं है। फिर भी जो मनुष्य प्राप्त शक्ति का सदुपयोग नहीं करता है वह पशु से भी निकृष्ट क्यों न कहा जाय? धर्म के शरण बिना लेश मात्र भी सुख नहीं मिल सकता। धर्म कोई कटु औषधि नहीं है कि जिसका सहारा सिर्फ दुःख में ही लिया जावे। धर्म वह कोई आभूषण नहीं है कि जो मात्र पर्व दिनों में ही पहिना जाय।

अधम राय की सवारी पधारे तब उस के निमित्त अच्छी सड़क (Road) बनाई जाय उस पर मखमल बिछाया जाय और

है। धर्म का नियमन काल्पनिक नहीं किन्तु शाश्वत है। धर्मतत्व यह पूर्वाचार्यों का किया हुआ अद्भुत आविष्कार है। जितने अंशों में धार्मिकता का अभाव उतने ही अंशों में पाशविकता का प्राधान्य। जितने अंशों में धर्म भावना उतने ही अंशों में चैतन्य तत्व। पुण्यानुबन्धीपुण्य के उदय से ही धर्मतत्त्व की प्राप्ति होती है।

धर्म के बिना पुण्य नहीं और पुण्य के बिना शाता नहीं। समस्त सुखों का धाम व सुख की जड़ धर्म और सर्व दुःखों का धाम अधर्म है।

समुद्र को पार करने के लिये नौका का आविष्कार किया गया है उसी तरह संसार समुद्र में तिरने के लिये ज्ञानी पुरुषों ने धर्म रूप प्रवहण (नाव) का आविष्कार किया है। शुद्ध हवा के अभाव से रोग बढ़ता है वैसे ही धर्म के अभाव से आत्मा पापरूप रोग बढ़ता है। निरक्षरों (अनपढ़) के ज्ञान पोथी लकीरें दिखाई देती हैं वैसे ही हीनपुण्यजीवों को धर्मतत्त्व निर्माल्य सा मालूम होता है।

धर्मतत्व के लिये देव भी सोच करते हैं, किन्तु अज्ञानी धर्म भावना का उपहास करते हैं।

मनुष्य की प्रत्येक प्रवृत्तियों—ब्योपार, गुमास्ती दलाली आदि में केवल धन कमाने का ध्येय रहता है वैसे ही मनुष्यों की समस्त प्रवृत्तियों में धर्म का ध्येय होना चाहिए। अन्यथा बिना माल थैले (बारदान) के समान मनुष्य की निर्माल्य स्थिति समझनी चाहिये। मनुष्यों के चारित्र का विकाश करने की क्षमता उसी

नाम धर्म । धार्मिक जीवन ही नैसर्गिक जीवन है । शेष जीवन एवं निरर्थक है ।

पशुगण अपने जीवन में शरमिन्दा नहीं होता वैसे ही धर्म रहित मनुष्य भी अपने जीवन से नहीं शरमाता । धर्मरहित मनुष्य के जन्म पशु भूमि का शोभारूप है । अगर यों कहा जाय कि धर्मरहित मनुष्यों का अधिकांश भाग पशुभूमि को भी लज्जित कर रहा है तो भी अत्युक्ति न होगी । मनुष्य जितने अंश में पशु कोटि में है उतने अंशों में वह विषयकषायकी प्रवृत्तियों में लज्जित नहीं होता । जितने अंश में धार्मिकता का अभाव है उतने अंश में अपने अधम मय जीवन के लिए लज्जा व पश्चाताप है ।

जड़ एंजिन में जिस प्रकार अग्नि एवं पानी की शक्ति काम कर रही है उसी प्रकार जड़ शरीर में शक्ति रूप धर्म व पुण्य है धर्म को बाहर देख या नहीं किन्तु वह हमारे हर एक श्वासोच्छ्वास में सहायक है । बिना धर्म के मनुष्य का मूल्य मांस के पिण्ड से अधिक नहीं है । धर्म के ही प्रभाव से मांस का यह लोथा पृथ्वी पर गिर पड़ता ।

धर्मतत्त्व पशुओं में नहीं है । फिर भी जो मनुष्य प्राप्त शक्ति का सदुपयोग नहीं करता है वह पशु से भी निकृष्ट क्यों न कहा जाय ? धर्म के शरण बिना लेश मात्र भी सुख नहीं मिल सकता । धर्म कोई कटु औषधि नहीं है कि जिसका सहारा सिर्फ दुःख में ही लिया जावे । धर्म वह कोई आभूषण नहीं है कि जो मात्र पर्वों में ही पहिना जाय ।

धर्म राय की सवारी पधारे तब उस के निमित्त अच्छी सड़क (Road) बनाई जाय उस पर मखमल बिछाया जाय और

है। धर्म का नियमन काल्पनिक नहीं किन्तु शाश्वत है। धर्मस्थान यह पूर्वाचार्यों का किया हुआ अद्भुत आविष्कार है। जितने अंशों में धार्मिकता का अभाव उतने ही अंशों में पाशविकता का प्राकट्य। जितने अंशों में धर्म भावना उतने ही अंशों में चैतन्य तत्व। पुण्यानुबन्धीपुण्य के उदय से ही धर्मतत्त्व की प्राप्ति होती है।

धर्म के बिना पुण्य नहीं और पुण्य के बिना शाता नहीं। समस्त सुखों का धाम व सुख की जड़ धर्म और सर्व दुःखों का धाम अधर्म है।

समुद्र को पार करने के लिये नौका का आविष्कार किया गया है उसी तरह संसार समुद्र में तिरने के लिये ज्ञानी पुरुषों ने धर्म रूप प्रवहण (नाव) का आविष्कार किया है। शुद्ध हवा के अभाव से रोग बढ़ता है वैसे ही धर्म के अभाव से आत्मा में पापरूप रोग बढ़ता है। निरक्षरों (अनपढ़) को ज्ञान पोथी में लकीरें दिखाई देती हैं वैसे ही हीनपुण्य जीवों को धर्मतत्त्व निर्माल्य सा मालूम होता है।

धर्मतत्व के लिये देव भी सोच करते हैं, किन्तु अज्ञानी धर्म भावना का उपहास करते हैं।

मनुष्य की प्रत्येक प्रवृत्तियों—व्यौपार गुमास्ती दलाली आदि में केवल धन कमाने का ध्येय रहता है वैसे ही मनुष्यों की समस्त प्रवृत्तियों में धर्म का ध्येय होना चाहिए। अन्यथा बिना माल के थैले (बारदान) के समान मनुष्य की निर्माल्य स्थिति समझना चाहिये। मनुष्यों के चारित्र का विकास करने की कला उसी का

नाम धर्म । धार्मिक जीवन ही नैसर्गिक जीवन है । नय नीति एवं नियम है ।

पशुगण अपने जीवन से शर्मिंदा नहीं होता वैसे ही धर्म रहित मनुष्य भी अपने जीवन से नहीं शरमाते । धर्मरहित मनुष्य केवल पशु भूमि को शोभास्पद है । अगर यों कहा जाय कि धर्मरहित मनुष्यों का अधिकांश भाग पशुभूमि को भी लज्जित कर रहा है तो भी अत्युक्ति न होगा । मनुष्य जितने अंश में पशु कोटि में है उतने अंशों में वह विषयकषायकी प्रवृत्तियों से लज्जित नहीं होता । जितने अंश में धार्मिकता का अभाव है उतने अंश में अपने अधर्ममय जीवन के लिए अभाव पश्चात्ताप है ।

जड़ एञ्जिन में जिस प्रकार अग्नि एवं पानी की शक्ति काम कर रही है उसी प्रकार जड़ शरीर में शक्ति रूप धर्म व पुण्य है । धर्म को आदर दो या नहीं किन्तु वह हमारे हर एक श्वासोच्छ्वास में सहायक है । बिना धर्म के मनुष्य का मूल्य मांस के पिण्ड से अधिक नहीं है । धर्म के ही अभाव में मांस का यह लोदा पृथ्वी पर गिर पड़ेगा ।

धर्मतत्त्व पशुओं में नहीं है । फिर भी जो मनुष्य प्राप्त शक्ति का सदुपयोग नहीं करता है वह पशु से भी निकृष्ट क्यों न कहा जाय ? धर्म के शरण बिना लेश मात्र भी सुख नहीं मिल सकता । धर्म कोई कटु औषधि नहीं है कि जिसका सहारा सिर्फ दुःख में ही लिया जावे । धर्म यह कोई आभूषण नहीं है कि जो मात्र पर्वदिनों में ही पहिना जाय ।

अधर्म राय की सवारी पधारे तब उस के निमित्त अच्छी सड़क (Road) बनाई जाय उस पर मखमल बिछाया जाय और

है। धर्म का नियमन काल्पनिक नहीं किन्तु शाश्वत है। धर्मतत्त्व यह पूर्वाचार्यों का किया हुआ अद्भुत आविष्कार है। जितने अंशों में धार्मिकता का अभाव उतने ही अंशों में पाशविकता का प्राबल्य। जितने अंशों में धर्म भावना उतने ही अंशों में चैतन्य सत्व। पुण्यानुबन्धीपुण्य के उदय से ही धर्मतत्त्व की प्राप्ति होती है।

धर्म के बिना पुण्य नहीं और पुण्य के बिना शाता नहीं। समस्त सुखों का धाम व सुख की जड़ धर्म और सर्व दुःखों का धाम अधर्म है।

समुद्र को पार करने के लिये नौका का आविष्कार किया गया है उसी तरह संसार समुद्र में गिरने के लिये ज्ञानी पुरुषों ने धर्म रूप प्रवहण (नाव) का आविष्कार किया है। शुद्ध हवा के अभाव से रोग बढ़ता है वैसे ही धर्म के अभाव से आत्मा में पापरूप रोग बढ़ता है। निरक्षरों (अनपढ़) के ज्ञान पोथी में लकीरें दिखाई देती हैं वैसे ही हीनपुण्य जीवों को धर्मतत्त्व निर्माल्य सा मालूम होता है।

धर्मतत्व के लिये देव भी सोच करते हैं, किन्तु अज्ञानी धर्म भावना का उपहास करते हैं।

मनुष्य की प्रत्येक प्रवृत्तियाँ—व्योपार गुमास्ती दलाली आदि में केवल धन कमाने का ध्येय रहता है वैसे ही मनुष्यों की समस्त प्रवृत्तियों में धर्म का ध्येय होना चाहिए। अन्यथा बिना माल के थैले (बारदान) के समान मनुष्य की निर्माल्य स्थिति समझना चाहिये। मनुष्यों के चारित्र का विकाश करने की कला उसी का

नाम धर्म। धार्मिक जीवन ही नैसर्गिक जीवन है। पाप जीवन
व्यर्थ निरर्थक है।

पशुगण अपने जीवन से शरमिंदा नहीं होता वैसे ही धर्म
रहित मनुष्य भी अपने जीवन से नहीं शरमाते। धर्मरहित मनुष्य
इस पशु भूमि का साधारण है। अगर यों कहा जाय कि धर्महित
मनुष्यों का अधिकांश भाग पशुभूमि को भी लज्जित कर रहा है
तो भी अत्युक्ति न होगी। मनुष्य जितने अंश से पशु कोटि में है
उतने अंशों में वह विषयकषायकी प्रवृत्तियों से लज्जित नहीं होता।
जितने अंश में पाशविकता का अभाव है उतने अंश में अपने अधम
मय जीवन के लिए पश्चात्ताप है।

जड़ एंजिन में जिस प्रकार अग्नि एवं पानी की शक्ति काम
कर रही है उसी प्रकार जड़ शरीर में शक्ति रूप धर्म व पुण्य है
धर्म का आदर हो या नहीं किन्तु वह हमारे हर एक श्वासोच्छ्वास
में सहायक है। बिना धर्म के मनुष्य का मूल्य मांस के पिण्ड से
अधिक नहीं है। धर्म के ही प्रभाव से मौत का यह जोड़ा पृथ्वी
पर गिर पड़ता।

धर्मतत्त्व पशुओं में नहीं है। फिर भी जो मनुष्य प्राप्त शक्ति
का सदुपयोग नहीं करता है वह पशु से भी निकृष्ट क्यों न कहा
जाय? धर्म के शरण बिना लेश मात्र भी सुख नहीं मिल सकता।
धर्म कोई कटु औषधि नहीं है कि जिसका सहारा सिर्फ दुःख में
ही लिया जाय। धर्म यह कोई आभूषण नहीं है कि जो मात्र पर्व
दिनों में ही पहिना जाय।

अधम राय की सवारी पधारे तब उस के निमित्त अच्छी
सड़क (Road) बनाई जावे उस पर मखमल बिछाया जावे और

धर्मस्थानको अपमानित कर दूर धूत किया जाय यह कैसी घातक अज्ञानता !! धर्मतत्त्व की अवहेलना से ही अधर्म में प्रवेश होता है। धर्म की अश्रद्धा ही दुःख एवं दारिद्र का मूल है। धर्म रहित जीवन इह-पर उभय के लिये नितान्त भयप्रद है। इसलिये तो विचार करो दृढ निश्चय करो कि धर्मस्थान ही हमारी रक्षा के लिये किले के सदृश है समस्त जाति समाज व देश को एक सूत्र में पिरोने वाला एक धर्म ही है। मानवसमाज में से धर्मतत्त्व यदि निकल जाय तो समग्र देश के मनुष्य जंगली पशुओं से भी विशेष भयंकर हो जाय।

साम्प्रत समय का जड़वादी समाज ऐसा पामर बन गया है कि धन के समान प्रत्यक्ष लाभ का अनुभव न हो तो धर्म की आराधना नहीं करता उदर निर्वाह के लिये आत्मा भी कमाई के यहां वास्ते करते है। धर्म एवं धर्माचार्य के स्थान पर धन एवं धनाचार्यों की पूजा हो रही है। ज्ञान व क्रिया के स्थान में सोना व चांदी में ही धर्म माना जाता है। परन्तु स्मरण है कि, विश्व में सुख शान्ति का आधार स्थंभ केवल एक धर्म ही है। यदि धर्म का अभाव हो तो सारा संसार नष्ट हो जाय।

धर्म स्थान पवित्र है तो धर्म करने वालों में पवित्रता आनी चाहिए। धर्म की जिज्ञासा रखने वालों को चाहिये कि वे अपने को रजकण से भी लघु समझें। जिस में लघुता का भाव नहीं वह धर्म का अधिकारी भी नहीं। बाजार में गरीबों के साथ ठगाई करना और धर्मस्थान में ज्ञान ध्यान की बातें बनाना यह तो बाजारू ठगाई से भी अधिक भयंकर है।

योग्य कार्य ही धर्म और अयोग्य कार्य ही अधर्म है। मनुष्य का हित करना उसमें सर्व गुणों का समावेश हो जाता है। नीति

गृह नींव है और धर्म दीवार है नींव बिना दीवार नहीं टिकती।

धन के अभाव से नहीं किन्तु धर्म के अभाव से शर्मिंदा होना चाहिये। अधोगति के कारणों को नष्ट कर दे उसी का नाम धर्म धार्मिकता का अर्थ शान्त स्वभाव एवं निरभिमानता है। धर्म बुद्धिग्राह्य नहीं किन्तु हृदयग्राह्य है। पवित्र विचार एवं पवित्र आचार यही धार्मिक जीवन है।

धर्म-रहित भिक्षुक।

धर्म धन के बिना आत्मा अनन्त काल से भिक्षुक (मँगता) बना हुआ है। अनन्त काल से भीख माँगते २ पुरुषार्थ हीन और रोगी बना हुआ है। (जिस भाव रोग के सम्बन्ध में आप पहिले पढ चुके हैं)। ऐसे धर्म रहित भिक्षुक महा-पुरुषों के लिये दया पात्र हैं, धर्मांध जीवों के लिए हास्यास्पद हैं और विषय कषायी जीवों के लिए क्रीड़ा स्थान है।

ऐसे धर्म हीन भिक्षुक जीव की तृष्णारूपी क्षुधा कभी शान्त नहीं होती। अतः वह सर्वथा अनाथ है। पापरूपी भूमि पर शयन करने से ऐसे भिक्षुक की हड्डियाँ व शरीर घिस गए हैं, कर्म-रूप धूलि से अति मलीन होगया है, एवं विषय कषाय की भिक्षा सदा माँगते रहने से चौदह राज-लोक में भटक रहा है। उसके पास भीख माँगने के लिए आयु कर्म रूपी फूटी हराडी है। 'स्वर्ग नहीं है, नरक नहीं है पुण्य नहीं है' ऐसी २ मिथ्या कल्पना रूपी बालक इस भिक्षुकको सताते हैं और उससे पाप वृत्ति करा गति में भेजते हैं।

शब्द, रूप गन्ध रस व स्पर्श आदि तुच्छ अच्छिष्टान्न इस भिक्षुक आत्मा को अधिक प्रिय है। यह भिक्षुक अपनी भिक्षा का अन्न अन्य कोई न खोस ले इस लिए सदा भयभीत व सावधान रहता है। यह विषय कषाय का मलिन भोजन करने से बुद्धिहीन होगया है, जिससे सम्यक् विचार भी नहीं कर सकता। विषय कुपथ्य भोजन से उसके शरीर में मलरूप कर्म सञ्चय का रोग पद होगया है। और उस अजीर्ण जन्य शूल रोग की भांति नरक व तिर्यच गति की पीडाएँ सहता है। महा-मोह निद्रा से उसके वि वेक चक्षु बंद होगये हैं। विषय कषाय के कुपथ्य भोजन से उसके चारित्ररूप पथ्य भोजन रुचिकर नहीं मालूम होता। क्रोध, मान माया, लोभ राग व द्वेष के प्रहार से यह भिखारी पीडित हो रह है, भान भूल गया है। ऐसी निर्माल्य दशा में भी स्त्री, पुत्र व ध मिल जाय तो परम सन्तोष मानने की धृष्टता करता है। अपन रक्षा के लिये दास-दासी रखता है। इसके अलावा वह भिक्षुक उपकारी ज्ञानी पुरुषों से भी सदा भय भीत रहता है। यह सोच कर कि, शायद उनके उपदेशों से या लोक लज्जा से दानादि शुभ कार्यों में द्रव्य व्यय न करना पड़े। इस भय से सत्पुरुषों का समा गम भी नहीं हो सकता। धन का भिक्षुक यह धनिक धन के बंधन में यहां तक फँस जाता है, कि स्त्री धन पुत्रादि का मोह कभी नहीं छोड़ सकता। धन का भिक्षुक धन को परमात्मा की मूर्ति मान कर स्वयं धन का उपासक योगी बनकर उसकी आराधना करता है। ऐसा भिक्षुक चौदह राजलोक के कौने २ में भिक्षा के लिए चक्कर लगा कर अष्ट कर्म रूप पाथय (भाता) को जो कि भव रोग का मूल है, अपने भिक्षा पात्र में भरता है। इसमें उसको परमानंद की प्राप्ति होती है। कर्म रूप पाथय यद्यपि उसके रोगों की वृद्धि करता है तो भी अज्ञानतावश पुनः ऐसा ही करके रोग एवं दुःख

का भागी बनता है। सत्य चारित्र आदि पथ्य भोजन जो कि रोगों का नाश करने वाला है उस पर उदासीनता प्रकट करता है। माता, पिता, बन्धु, मित्र पुत्र, पुत्री, देव, गुरु, राजा और सब परिवार एक धर्म ही है। धर्म रूप कर्णेन्द्रिय के द्वारा तमाम शास्त्रों का अर्थ सुनना सुलभ होता है। धर्म तीनों लोकों को हस्तामलकवत् दिखाने में समर्थ-कन्यायादर्शी नेत्रों के समान है। धर्म को रत्न-राशि की उपमा दी जाती है। अतः विश्व भर में सर्वोत्कृष्ट स्थान केवल धर्म का ही है।

जब परोपकारी महात्मा भिक्षुक को सदुपदेश देते हैं तब वह पुण्यहीन पामर आत्मा विपरीत विचार करता है, कि मुनिराज अपने आत्म ध्यान से च्युत होकर मेरी इच्छा न होने पर बलात् मुझको व्याख्यानादि श्रवण करने के लिये क्यों नियम आदि कराते हैं? क्या उपदेश के द्वारा वे मुझको जाल में फँसाना चाहते हैं? ऐसे भ्रम में पड़कर वह गुरु को अपमानित करता है। इससे गुरु विशेष रूप से आत्म ध्यान में लीन हो जाते हैं। ऐसे भ्रम एवं अज्ञान को देखकर महात्माओं को महद् आश्चर्य होता है।



मानव-भव ।

ज्ञानी पुरुष समुद्र को रत्नों की निधि समझता है किन्तु अज्ञानी इसे केवल नमक को देने वाला मानता है । इसी तरह ज्ञानी पुरुष मनुष्य जन्म को मोक्ष का साधन भूत और अज्ञानी विषय भोग का साधन भूत समझते हैं। देवों को भी दुर्लभ मनुष्य भव यदि धर्म रहित है तो देवों को तो क्या ? किन्तु नारकी के लिए भी अनिन्द्यनीय व अधम बन जाता है। पशुओं में विषय कषायों पर अंकुश रखने की शक्ति नहीं है किन्तु मनुष्य में है। यही मनुष्य की विशेषता है। यह विशेषता न हो तो मनुष्य पशु के समान ही है । मनुष्य अपना मस्तक ऊंचा रख के चलता है, किन्तु पशु नीचा करके। उन्नत मस्तक वाले मनुष्य का स्वभाव स्वर्ग मोक्ष प्रद कार्य करने का है । मनुष्य देह से बढ़कर कोई शरीर तीन लोक में नहीं है ।

पवित्र विचारों से ब्राह्मण, आश्रितों की सहायता देने से क्षत्रिय परोपकारार्थ धन संचय करने से वैश्य और विश्व की सेवा करने से शूद्र, ये मनुष्य समाज के चार अंग हैं । इसी तरह मनुष्य के शरीर में भी परोपकार मय जीवन के सूचक चार अंग हैं, मस्तिष्क, भुजा पेट और पैर ये चारों अवयव परोपकार मय जीवन बिताने की प्रेरणा करते हैं।

मनुष्य देह भव सागर से तिरने के लिए नाव के समान है। मानव-भूमि देव भूमि से भी उत्तम है। क्योंकि मनुष्य अपना भविष्य इच्छानुसार बना सकता है। यह शक्ति देवों में तो क्या अन्य किसी भी जीव योनि में नहीं है। मनुष्य भव से अधिक महत्व किसी देव का भी तीन लोक में नहीं है। अनन्त भवों में की

हुई कृषि एवं बोये हुये जीवों के फल प्राप्ति करने का यह समय है। अन्य योनि के अनन्त जीवों से भी मानव भव सर्वोत्कृष्ट एवं प्रधान है, अतः इस भव में कार्य भी उत्कृष्ट एवं प्रधान करने चाहिए।

उछाला हुआ पत्थर आकाश में रहे इतनी स्थिति मनुष्य भव की, और फिर जमीन पर पत्थर के रहने की स्थिति के बराबर स्थावर व अन्य जीवायोनि की स्थिति समझनी चाहिये। मानव भूमि यह मोक्ष भूमि है। आत्मगुणों के विकास की परीक्षा देने की भूमि है। मानव भव जीव और शिव के बीच का पुल है। मानव भवरूप कल्पवृक्ष मिलने से मनोवांछित फल मिलते हैं। कोई स्वर्ग मांगते हैं कोई नर्क। सब अपनी २ योग्यता के अनुसार ही मांगते हैं। तदनुसार ही गति होती है।

धर्माराधन मनुष्य भव में ही हो सकती है। इसके बिना जीव अनेक योनियों में अपने पापों के फलों को भोगते हैं। बछड़ों को बाल्यावस्था में माता का दूध नहीं मिलता है, युवावस्था में जननेन्द्रिय काटी जाती है। उन्हें क्षुधा तृषा से पीड़ित होकर भी गाड़ी का भार वहन करना पड़ता है। उन की कोमल नाक को छेद कर असह्य नाथ डाली जाती है। जीवन पर्यन्त बेचारों को असह्य मार सहनी पड़ती है। मृत्यु के बाद भी उनकी आंतों के दह धुनने के लिए तार बनाये जाते हैं। उनके चमड़े की अनेक चीजें बनाई जाती हैं, उनको कत्ल किया जाता है। इस प्रकार से अनेक प्रकार से यातनाएं दी जाती हैं। तात्पर्य यह है कि अधम जीवायोनि में उत्पन्न होने वाले जीवों को जीवन भर दुख भोगना पड़ता है। और मृत्यु के अनन्तर भी उनके शरीर के तत्वों की दुर्दशा की जाती है। बछड़ों के सदृश निर्दोष एवं अत्युपयोगी जीवों की जब

इस प्रकार दुर्दशा की जाती है तो पाप मय जीवन बिताने वाले मनुष्यों की दुर्दशा इससे भी अधिक होनी चाहिये यह निर्विवाद सिद्ध बात है। शान्त स्वभाव, परोपकारी जीवन एवं सद्गुणों की प्राप्ति ही मनुष्य भव में उत्तम वस्तुएँ हैं। जब समुद्र में स्थित सर्चलाइट का छोटा सा दीपक भी हजारों मनुष्यों की जान बचाता है तो मनुष्य जैसे उत्तम भव से परमार्थ करना चाहिये। इसे स्वयं समझा जा सकता है।

मनुष्य के तीन प्रकार के कुटुम्ब होते हैं।

१ दया, गुरु, धर्म, क्षमा, नम्रता सरलता, सन्तोष, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, दान शील तप, भावना आदि

२ क्रोध, मान माया लोभ, राग द्वेष, ईर्षा और अज्ञान आदि।

३ माता पिता भाई, बहिन, पुत्र, पुत्री, स्त्री, सास, ससुर आदि।

पहिले का कुटुम्ब मनुष्य के हित की चिन्ता करता है। दूसरा अहित का चिंतक और तीसरा कुटुम्ब अल्पकाल के लिए मिलता है। वह अल्पकाल के लिए ही रहता है।

मृत्यु के बाद अल्प काल के लिए प्राप्त होने वाला कुटुम्ब यहीं छूट जाता है। एवं दूसरे नम्बर के कुटुम्ब को बढ़ाने में सहायता करता है। इतना ही नहीं किन्तु पहिले नम्बर के कुटुम्ब का अज्ञान वश तीव्र विरोध करता है। मनुष्य प्रथम नम्बर के कुटुम्ब के साथ प्रेम करे तो तीसरे नम्बर का कुटुम्ब दूसरे की सहायता से उसे मार

भगाता है, पर वापिस न आवे इस हेतु से मार २ कर उस को नि सत्व बना देता है। सदपजीवन प्रथम कुटुम्ब के साथ दूसरा व तीसरा कुटुम्ब द्वेष व द्रोह करते हैं। तीसरे नम्बर के अज्ञान कुटुम्ब का पहिले की साथ अनादि काल से वैर है। दूसरे व तीसरे नम्बर वालों की आकर्षण शक्ति अधिक है अतः उनका सम्मान होता है और पहिले नम्बर के कुटुम्ब का आकर्षण रहित एवं निर्धन समझ कर उस तिरस्कृत कर भगा देते हैं। दूसरे नम्बर का कुटुम्ब परलोक में साथ रहता है। जीव अज्ञान के वश सुखदायी कुटुम्ब का तिरस्कार और दुःखदायी कुटुम्ब का बहुमान करता है और इनकी रक्षा व सेवा के लिये मनुष्य अपनी तमाम आयु बिता देता है।

५—मनुष्यत्व !

वकील, बैरिस्टर, सॉलीसीटर डॉक्टर वैद्य आदि अनेक विषयों की परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने वाले हजारों लोग प्रति वर्ष दिखाई देते हैं। परन्तु मनुष्यत्व की परीक्षा लेने देने वाला या इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाला एक भी मनुष्य नजर नहीं आता। मनुष्यत्व की सच्ची शिक्षा देने वाले स्कूल, कॉलेज एवं अध्यापक व पाठ्य पुस्तक आदि भी दृष्टिगोचर नहीं होतीं। समस्त परीक्षाएं व पदवियों की अपेक्षा मनुष्यत्व की परीक्षा एवं पदवी महान है। इस पदवी को प्राप्त करने वाले व्यक्ति विरले ही होते हैं। मनुष्याकृति में घूमते फिरते करोड़ों मनुष्य दृष्टि गोचर होते हैं। किन्तु आकृति के अनुरूप हृदय वाले, मनुष्यत्व सम्पन्न—मानवता के गुणों से अलंकृत प्राणियों के दर्शन अति दुर्लभ है। समस्त शिक्षाएं वाचन मनन, लेखन, चिन्तन, ये सब एक मात्र मनुष्यत्व प्राप्त

करने के लिये ही हैं। सूर्योदय से समग्र अन्धकार का नाश होता है, इसी तरह मनुष्यत्व की प्राप्ति से सर्व दोषों का नाश हो जाता है। मनुष्यत्व जीवन का सर्वोच्च स्थान है। मनुष्यत्व रहित जीवन नीचातिनीच पशु पक्षियों से व नारकी से भी निकृष्ट है। मनुष्यत्व की प्राप्ति होने से उसमें सब प्रकार के सद्गुणों के बीज बोये जाते हैं। शरीर के स्वास्थ्य की रक्षा से मनुष्यत्व की रक्षा अधिक करना चाहिये। मनुष्यत्व ही सच्ची स्वस्थ दशा है।

भिन्न २ आकृतियों के अनेक मनुष्यों को देख २ कर अच्छा चित्रकार उनमें से सब सुन्दर अवयव एक ही चित्र में अंकित करता है, इसी तरह भिन्न २ मनुष्यों के सद्गुणों का समुदाय एक ही व्यक्ति में प्रादुर्भूत होना चाहिये।

वृक्ष की लकड़ी से समुद्र तिरने की नौका बनती है वैसे ही मानव वृक्ष की सद्गुणरूप लकड़ी में से संसार समुद्र को पार कराने वाली जीवन नौका बनानी चाहिये।

पृथ्वी पानी अग्नि, वायु और वनस्पति रूप स्थावर जीवों का जीवन मनुष्य जीवन के लिये अतिउपयोगी है तो मानवजीवन समस्त विश्व के लिये विशेषतः उपयोगी होना ही चाहिये।

पशु पक्षी अपना, अपनी सन्तान का एवं अपनी ज्ञाति का श्रेय अपने स्वत्व का भोग दे करके भी करते हैं। मनुष्य जहां तक स्वकुटुम्ब व स्वज्ञाति का श्रेय करे वहां तक तो उसको पशु जीवन के समान ही मानना चाहिए।

जिस प्रकार चन्द्र सूर्य अभेद भाव से प्रकाश देकर विश्व की सेवा कर रहे हैं उसी प्रकार मनुष्यत्व की प्राप्ति के इच्छुक मनुष्य

को चाहिये। व समस्त विश्व को सदा अभेद भाव से कर 'वसुधैव कुटुम्बकम्" इस सूत्र को सदैव स्मरण में रक्खें। इस विशाल भावना में जितनी संकुचितता रहेगी उतने अंशों में मनुष्यत्व में भी न्यूनता रह जायगी।

नम्रता, विनय, दया और निरभिमानता ये चारों सद्गुण मनुष्य के स्वभाव में होने चाहिये। इन सद्गुणों बिना वह अपूर्ण है। ऐसे मनुष्यों को शास्त्रकारों ने भाव से नरक तथा पशुयोनि के जीव कहे हैं।

६—सत्य श्रीमन्ताई

हीरे व सोने में सच्चा खज़ाना नहीं है, पर सच्चा खज़ाना तो अपनी आत्मा में है। जो कम से कम सम्पत्ति में सन्तोष मान ले वह बड़े से भी बड़ा श्रीमन्त है। निर्धनता में भी हृदय की विशालता ही सच्ची धनिक-वृत्ति है। अपना राज मुकुट अपने ही अन्तःकरण में है। उस मुकुट को हीरे मोती व शृंगार की आवश्यकता नहीं होती। ऐसा मुकुट शायद ही किसी राजा के भाग्य में होगा। उस मुकुट का नाम है सन्तोष व चारित्र। सदाचार ही सब से बड़ा धन है। शरीर की सुदृढ़ हड्डियां हीरे से भी अधिक मूल्यवान हैं। सदाचार, पवित्रता, नम्रता व परोपकार ये सत्य द्रव्य हैं। लोभ असन्तोष उत्तरोत्तर बढ़ने वाला राक्षस है। चारित्र की वृद्धि से ही श्रीमन्ताई की वृद्धि होती है। संसार के धनी मृत्यु के समय सब कुछ छोड़ कर मृत्यु को प्राप्त होता है।

सद्गुणों की वृद्धि और कमी के प्रमाण से ही श्रीमन्ताई या दीनता का माप है। क्षमा, विनय, सरलता, सन्तोष व

सहिष्णुता ये सद्गुण कुबेर के भण्डार से भी अधिक मूल्यवान होते हैं। सुवर्ण मोहरों का संग्रह करने के बजाय सुवर्ण मय विचारों का संग्रह करना विशेष हितकर है। इससे शाश्वत एवं सच्चे सुख की प्राप्ति होगी। धन से रहित मनुष्य दीन है, मगर जिसके पास पैसे के सिवा और कुछ भी (चारित्र) नहीं वह तो महा दीन है। गुण दृष्टि यह महान् सम्पत्ति है। दोष दृष्टि में महान दारिद्र बसा हुआ है। जो समस्त पृथ्वी को जीतने वाला चक्रवर्ती राजा हो जाय किंवा समस्त जगत् की धन सम्पत्ति प्राप्त कर ले, तो भी यदि उसके पास चारित्र रूप आत्मिक लक्ष्मी न हो तो उस का धन धूल के समान है। धन रहित होने पर भी चारित्र धन का श्रीमन्त बनना चाहिये। लक्ष्मी दुर्गुण की फांसी है।

करोड़ों रुपयों का ढेर होने पर भी मनुष्य कंगाल होता है। सदाचार रूप धन के सामने हीरे, मोती व माणक का मूल्य कंकर से अधिक नहीं होता। चारित्र को ही निजी सम्पत्ति बना लो, फिर निर्धनता का स्पर्श भी न होगा। सद्गुण रूप निज सम्पत्ति को अपने हृदय की तिजोरी में भर दो। यह चारित्र धन कभी नष्ट न होगा। यह रत्नसम्पत्ति हृदय बैंक में जमा रखने से सूद भी सब से अधिक मिलेगा। राज मुकुट धारण करने वालों की अपेक्षा सदाचारी विशेष सत्तावान् है। उच्च कुल की अपेक्षा भी सदाचार सब से महान उच्च है।



प्रजा न हो तो तुम्हारी लक्ष्मी का सदुपयोग कैसे हो सकता है ? जो सम्पत्ति भोग विलासों में व्यय होने वाली थी और जिससे दुर्गति मिलने वाली थी, उसी सम्पत्ति का दान देने से (दीन हीन प्रजा के लिये उपयोग में लाने से) पुण्य बंध होता है और सद्गति की प्राप्ति होती है। आपको गरीब प्रजा की सहायता के लिए उचित क्षेत्र मिला है इसके लिये अपने आपको कृतार्थ समझिये और उस क्षेत्र में कूद पड़िये। वर्तमान में दान का क्षेत्र इतना संकुचित हो गया है कि दानवीर कहलाने वाले अपने आपको इस नाम से ही कृतार्थ समझ लेते हैं। और करोड़ों की सम्पत्ति के मालिक होते हुए भी अपनी कीर्ति की लालसा से मात्र कुछ हजार रुपयों का दान देकर अनन्त कीर्ति चाहते हैं। यह लालसा जनित दान सम्यग् दान नहीं कहा जा सकता। जलाशय का प्रतिबद्ध जल गन्दा हो जाता है, किन्तु सतत बहने वाली सरिता का जल विशुद्ध रहता है। उसी प्रकार कृपण व्यक्ति का धन तालाब के जल के समान एवं उदार व्यक्तियों का धन नदी के निर्मल जल के समान होता है।

कोयले पर किसी प्रकार का रंग नहीं चढ़ता। इसी प्रकार कंजूस कोयले के समान है और उदार व्यक्ति श्वेत हीरे के समान है। यह उदार व्यक्ति अपनी दान की प्रभा से चमक उठता है। दान ही सच्ची कमाई का एक साधन है और बिना जोखम का व्यौपार है। जैसे काय का फल काय ही देता है वैसे ही दान स्वतः अपना बदला चुकाता है। महान पूजा की लालसा से दान करना महती नीचता है।

परोपकार का अर्थ पर उपकार नहीं किन्तु अपने आत्म विकास का सोपान (सीढ़ी) है। पर हित साधना ही आत्म स्वाराध्य

८—ज्ञान—दान

जिस प्रकार सूर्य में सब प्रकाश समाविष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार जिनमें करोड़ों दानों का समावेश एक ज्ञान-दान में होता है। ज्ञान दान सूर्य प्रकाश के समान है, इतर सभी दान दीपक के प्रकाश समान है। अन्नदान, वस्त्रदान, पात्रदान, औषधदान जीवनदान, ये सब तो कुछ दिन मास या वर्षों के लिये शान्ति देने वाले दान हैं, और ज्ञानदान शाश्वत सुखोंको देने वाला परमोत्तम दान है। अज्ञान के योग से वर्तमान में इस सर्वश्रेष्ठ ज्ञान दान को लोग भूल गये हैं।

ज्ञान दान का दाता अनन्त काल के लिये आशीवाद को प्राप्त करता है। ज्ञानदान अनन्त काल के लिये शाश्वत-चक्षु का दान है। ज्ञानदान बड़े से बड़ी सेवा एवं सर्वोत्तम सुखों का दान है। विश्व में स्थान २ पर ज्ञान की प्याऊ एवं प्रभावना संस्थापित कर के शाश्वत सुखों की प्राप्ति करें व करावें।

कोट्यावधि पारमार्थिक संस्थाएँ (जिन में कि विश्व की तमाम संस्थाओं का समावेश किया जाय वन सके) से अधिक उपकारक सिर्फ एक ही ज्ञान संस्था होती है। अन्य क्षेत्रों में करोड़ रुपये का दान देने की अपेक्षा ज्ञान दान में दी हुई एक कौड़ी भी विशेष मूल्यवान् है। २५०० वर्ष से प्रभु महावीर का शासन चल रहा है और १८५०० वर्ष पर्यंत चलता रहेगा, यह केवल ज्ञान दान का ही प्रभाव है। भगवान् ऋषभदेव व महावीर प्रभु तथा अन्य तीर्थंकर एवं ज्ञानी पुरुषों का महत्व अद्यावधि अटल एवं सुरक्षित रहा है यह ज्ञानदान का ही प्रभाव है। ज्ञानदान का प्रवाह अनन्त काल के लिये शाश्वत बह रहा है। वर्षाऋतु में प्याऊ लगाने

और सुकाल में क्षेत्र सोजन की अपेक्षा उत्पाकाल में ज्यादा और दुष्काल में अन्नक्षेत्र की स्थापित करना विशेष आवश्यक है। इसी तरह वर्तमान अज्ञानांधकार मय जमाने में ज्ञान की ज्यादा सम्यग्ज्ञान प्रचारक संस्थाओं की परम आवश्यकता है। ज्ञान दान करने वाला तीन लोक की लक्ष्मी का दान करता है। ज्ञान प्राप्ति से तीन लोक के एवं मोक्ष के सुख प्राप्त किये जा सकते हैं। ज्ञान दान मोक्ष दान है। ज्ञानदान में समस्त दान समा जाते हैं। ज्ञानदान के लिये पत्रों की महिमा अकथ्य है। ज्ञानदान के प्रदाता जैनशासन का उद्धारक बनता है। ज्ञान दान ही सुखों का परम निधान है। ज्ञानदान उत्तमोत्तम गति को प्राप्त कराता है। ज्ञान सर्वोत्कृष्ट विभूति है। ज्ञानालंकार से विभूषित व्यक्ति सार संसार के लिये पूजनीय है। पापात्माओं का उद्धार ज्ञानदान से ही हो सकता है। ज्ञानदान स्व पर के लिये संसार तारक जहाज है।

६–परोपकार।

आत्मिक गुणों या दानों की संख्या इस प्रकार बढ़ती जाती है १+१=११+१=१११+१=११११। अतः इस विषय में सावधान रहने की परम आवश्यकता है। दान को ग्रहण करने वाला नहीं किन्तु देने वाला कर्जदार है। क्योंकि दया, दान, धर्म एवं परोपकार वृत्ति की परीक्षा करने का अवसर उसने दिया है। अतएव उसका परम उपकार मानना चाहिये। "मैंने उस पर उपकार किया है" ऐसा विचार करना भी अपराध है। दान लेने वाले से आभार किंवा प्रत्युपकार की प्रतीक्षा न करते हुए उलटा उस का आभार मानना चाहिये। "मैं किसी का श्रेय कर रहा हूं" यह विचार करना भी अभिमान है। दान के पात्रों का

पुण्य उदय होगा जब उनकी सेवा करने का अपने हृदय में भाव प्रकट होगा। अतएव अपनी सेवा की प्रधानता नहीं, किन्तु पात्र व पुण्योदय की है।

परोपकार को परोपकार मानना अहवृत्ति है। परोपकार में ही आत्मोपकार मानने से किसी कृतघ्नी की ओर से भलाई का बुरा बदला मिलने पर भी उसके प्रति दुर्भाव न होगा।

स्वशरीर की सेवा को परोपकार मानने वाले उपहास के पात्र है। इस प्रकार से समस्त विश्व रूप शरीर की सेवा को परोपकार मानने वाले को कितना अधिक उपहास का पात्र समझना चाहिये? कुटुम्ब सेवा में सर्वस्व का भोग देते हुए भी वह परोपकार नहीं समझा जाता तो फिर अपनी अनुकूलतानुसार सामान्यरूप से जो विश्व सेवा की जाती है उससे परोपकार किस तरह समझें?

हम किसी की सेवा करते हैं उस समय उस के पुण्य हमको उसका वाहन बनाता है उसमें परोपकार मानना भयकर पतन है।

हम पुण्यशाली जीवों के मजदूर हैं, और निजी धन, वैभवादि का उठाने वाले मजदूर भी हम हैं। अत समझना चाहिये कि हम पुण्यशालियों के मजदूर मात्र हैं। इससे अधिक कोई विशेषता हममें नहीं है।

रात्रि के समय 'ओस' चुपचाप वनस्पति की सेवा करता है और प्रातःकाल में मनुष्य जागृत होते हैं तब अदृश्य हो जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक परोपकारी प्रवृत्ति गुप्त रीति से करनी चाहिये। ओसबिन्दु की गुप्तसेवा के समान आदर्श परोपकार वांछनीय है।

दान (परोपकार) कर के मौन रहे वह उत्तम।

दान करके दूसरों से कहने वाला मध्यम।

दान देने के पहले ही उसके लिए ढोंढी पीटने वाला अधम।

१०—भावना ।

वाणी की अपेक्षा विचार विशेष सूक्ष्म होने से शुभा शुभ प्रवृत्तिओं का विशेष रूप से प्रेरक होता है । इस लिये वचन से भी विशेष अकुश विचारों पर रखने में सावधान रहो । वाणी, पानी के समान है और विचार बाष्प और विद्युत के समान है । बाष्प एव विद्युत् से भी मन की शक्ति अनन्त गुणा अधिक है । भाफ और बिजली सारे शहर को प्रकाश व तमाम यन्त्रों को गति देते हैं । इस तरह विचार समस्त विश्व को प्रकाश व गति देता है । भाफ और विद्युत् के ऊपर धनिकों का स्वामीत्व है, किंतु विचार के ऊपर धनी एव निर्धनी दोनों का समान स्वामीत्व है । पत्थर के डालने से उत्पन्न हुआ समुद्र का तरंग समस्त समुद्र में फैल जाता है, सर्दी, गर्मी और वर्षा की हवा सर्वत्र फैलती है, इसी प्रकार विचार भी तमाम विश्व में अति सरलता एव शीघ्रता पूर्वक फैलते हैं । अच्छे विचार स्व-पर का हित साधक एवं बुरे विचार उभय को अहितकारी होता हैं । विचार सूक्ष्म शरीर है, उसकी शक्ति स्थूल शरीर से भी अधिक है । इस लिये महापुरुषों ने शत्रुओं का भी हित चिंतन करने का सदुपदेश दिया है । शुभ विचार से शुभ और अशुभ विचार से अशुभ पुद्गल समूह आत्मा ग्रहण करती है । किसी के लिये बुरा विचार करना यह उसके सर पर तलवार उठाने के समान अपराध (पाप) है । समस्त जीवन व्यवहार का प्रेरक एवं उद्गम स्थान अपना [illegible] दर है । प्रथम विचार उठता है बाद हाथ उठते हैं । बुरा विचार अपनी अनेक सतति उत्पन्न करता है । और उन सब का निवास स्थान अपना शरीर होता है ।

गुप्त विचारों का भी अच्छा या बुरा असर अवश्य पडता है । अत [illegible] एक गुप्त से गुप्त विचारों को भी पवित्र रखना चाहिये ।

विचारों को शब्द द्वारा व्यक्त करे या नहीं, मगर उसका प्रभाव तो अवश्य ही दूसरों पर पड़ता है। तुम्हारे विचारों के तरग विश्व में टुकरा कर फिर तुम्हारे ही पास लौट आता है। अन्य के लिये किये हुए अच्छे या बुरे विचारों से दूसरों पर असर चाहे हो या न भी हो, पर स्वय अपने पर तो उसका अच्छा बुरा असर अवश्य होता है।

अच्छे विचार शरीर मे आरोग्य व बल को बढ़ाते हैं और बुरे विचार रोग व मृत्यु को। अच्छे विचारों का बदला शुभ तरंगों के रूप मे विश्व की ओर से मिलता है और वे शुभ तरग हमको दर्शनीय एव जगद्वल्लभ बनाते हैं। बुरे विचार का परिणाम इससे विपरीत होता है। प्रतिक्षण विचारों के द्वारा ही शरीर और मन की रचना होती है। अत विचारों पर पूर्ण रूप से अकुश होना चाहिये। अपनी वर्तमान स्थिति अपने विचारों का ही परिणाम है। बैलों के पीछे २ ज्यों गाड़ी खिंचाया करती है इसी तरह शुभाशुभ विचारों के पीछे २ सुख दुःख भी आया करते हैं। शरीर की छायावत् सुख दुःख भी विचारों के अनुगामी हैं।

पवित्र विचार प्रभु समान हैं और अपवित्र विचार पिशाच के समान हैं। विचार का रग मनुष्य के चारित्र पर लग जाता है। तुम विचार को भले ही भूल जाओ, किन्तु विचार तुमको भूलने वाला नहीं, उसकी नींव शाश्वत है। अपवित्र विचार, अपवित्र कार्य के समान भयकर है। बुरा विचार सिंह की तरह आत्मा पर उपद्रव पड़ता है। करोड़ों देवों से भी पवित्र विचार की सेवा आत्मा के लिये अधिक उपयोगी है। करोड़ों दुश्मन दानवों से भी तुम्हारा एक अपवित्र विचार अनत काल के लिये अधिक अहित करेगा। जिस प्रकार जल के परमाणु मेघ में एकत्रित होकर यथा

समय परमत हैं उसी प्रकार आत्मा में विचारों के शुभा शुभ पर माणु एकत्रित होकर स्वयं अपने भाव प्रकट करते हैं। विचार अन्तः करण में चाहे कितने ही गहरे दब हो तो भी अंकुर की तरह बाहर निकल आते हैं। बुरे विचार निकाल दिये जायें तो उसके स्थान में अच्छे विचार प्रगट होंगे। विचारों में अनन्त सामर्थ्य है अतः उन्हें पवित्र रक्खें। अपने भविष्य को बनाने वाले भाव ही हैं। अच्छी भावना सूर्य सहित काम करती हैं। त्यागी, योगी, ज्ञानी, वेश्या, परमार्थी और कसाई सब अपने २ विचारों से बने हैं और बनते हैं। वचन और विचार दूसरों के सामने मूर्ति मान खड़े करते हैं। निन्दा, लघुता, तिरस्कार आदि अशुभ विचार मूर्तिमान रूप होकर दूसरे पर असर करते हैं। गुलाब के निकट ठंडक के और भट्टी के निकट उष्णता के परमाणु प्रतीत होते हैं वैसे ही पवित्र विचार वाले के पास से पवित्र परमाणु निकलते हैं और अपवित्र विचार वालों से अपवित्र। माता और अच्छे [illegible] एक जाति होने पर भी दोनों से भिन्न प्रकार के परमाणु निकलते हैं। इसी प्रकार अच्छे और बुरे विचार वालों के परमाणुओं का असर होता है। अपना विचार शक्ति का अच्छे से अच्छा उपयोग करो। अपने विचार ही अपना भविष्य बनाता है। हम ही अपना भविष्य घड़ने वाले हैं।



११–भोग।

सर्वोत्तम पक्वान्न की विष्टा भी ग्रहण करने योग्य नहीं है वैसे ही उत्तमोत्तम भोग भी उपादेय नहीं है। क्यों कि वह अनन्त जीवों की विष्टा है। चलते समय दाहिने पैर के साथ बांया पैर उठता है वैसे भोग के साथ रोग अवश्य भावी है। भोग भाव रोग है और वह द्रव्य रोग (बीमारी) से अधिक भयंकर है। भोग के समय भोग्य पुद्गलों का आदि अन्त विचार कर जिसकी त्याग-भावना जागृत होती है वही सच्चा त्यागी है।

इन्द्रियों के भोग भोगना यह सांप को पकड़ कर उसके दांत से खाज खुजाने तुल्य है। ज्ञानियों को भोगी जीवों पर करुणा आती है, कि ये पामर जीव भोग के कटु फल नरक और निगोद को कैसे सहेंगे। भोग से इस भव में ही अनेक रोग होते हैं। तो परलोक में अनन्त दुःख होना स्वाभाविक है। भोगासक्त जीव इस लोक के रोगों से डरता नहीं है। तो परलोक का भय कहाँ से रक्खे ?

भोग विलास लक्ष मस्तकधारी दृष्टि विष सर्प तुल्य है। भोगी मनुष्य मृत्यु समय पीड़ित और दुःखित होकर भोगों को छोड़ कर म्लान मुख से भोगों की शिक्षा भोगने परलोक में जाता है। भोग सामग्री एकत्र करने में ताप (कष्ट) है। भोगने में अधिक ताप है। और फलत परलोक में महा ताप है।



१७-रोग।

रोग काले पर्दे में छिपकर आता है, पर उसमें आत्म जागृति के चन्द्र का प्रकाश चमकता रहता है। रोग ही समझाता है कि, संसार असार है और शरीर क्षणिक है। रोग भूतकाल की भूलो-कता का विशोधन है, भविष्य काल के लिये आत्मोन्नति का अ-रुणोदय है। रोग बड़े से बड़ी सेवा बजाता है। काश्तकारी की प्रगति के लिये खाद उपयोगी है, वैसे मानव की प्रगति के लिये रोग उपकारक है। रोग संसार स्वप्न का नाश करने वाला परमोप कारी है। संसारी जीवों को संसार कारागृह से तथा मोह से मुक्त करने रोग और दुःख लत्ता प्रहार कर चलाते हैं।

अय रोग! तुमको नमस्कार हो। तू जागृति में साधक है। हित करने वाला शत्रु भी मित्र है और अहित कर्ता मित्र भी शत्रु तुल्य है। जैसे अपने ही शरीर में उत्पन्न होने वाले रोग शत्रु तुल्य बाधक हैं और जंगल में रही हुई दवा मित्र तुल्य साधक है। सु-वर्ण की शुद्धता में अग्नि आवश्यकीय है वैसे प्रगति के लिये रोग आवश्यक है। जगत् में दुःख, शोक और क्लेश न होते तो प्र-गति भी न होती। संसार के त्रिविध दुःख मनुष्यों को अधोगति में जाने से रोकते हैं क्यों कि कुदरत द्वारा दुःख क्लेश रागादि होना यह जागृति के लिए उपकारक चेतावनी है।

अपनी नहीं तो परकी दया के खातिर भी खान पान में अं-कुश रखो, मिताहारी बनो, जिससे रोगी नहीं बनोगे और आपके अशुभ परमाणुओं का असर दूसरों को न होगा। यदि नरक द्वारा भी सत्य के प्रदेश में आना सुलभ हो तो उसके लिये भी कटि बद्ध बनो। श्रेणिक राजा जैसे नरक से नहीं घबराते, चूंकि वह भावी

निराश में साधक है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी अशुभ विचार रोग है और शुभ विचार आरोग्य है।

इसी प्रकार नियम से दिव्य भोग शाता का रोग है और नारक भोग अशाता का रोग है। मकान में से कचरा दूर करने के लिए बुहारी उपकारक है, वैसे ही शरीर का कचरा दूर करने के लिये रोग उपकारक है। शस्त्रों से रक्षा भी होती है और नाश भी। उपयोग करना आना चाहिये। इसी तरह रोग के समय घबरा कर दुर्ध्यान ध्याने वाला स्वयं दुःखी हो कर दुर्गति का बन्ध करता है और आत्म ज्ञानी सतर्क होता है, अपनी प्रगति करता है। जैसे-अनाथी मुनि, नमिराय राजर्षि।

१३—उपवास।

उपवास (अनशन) करने से जठराग्नि रोगों को भस्म करती है। ऐसा कोई भी रोग नहीं है जो उपवास द्वारा दूर न हो सके। उपवास से मगज शक्ति घटने की मान्यता गलत है। रोग के समय उपवास करने से रोग का विष जल जाता है और उपवास न करने से विष शरीर में फैल जाता है। अधिक खानपान से होने वाली मृत्यु संख्या दुष्काल की मृत्यु संख्या से अधिक गिनी गई है। रोग यह चेतावनी है कि शरीर में बढ़ा खानपान का कचरा भस्म कर के उपवास करो। उपवास के द्वारा रोगी नब्बे फी सैकड़ा निरोग होते हैं और दवाइयों से नब्बे फी सैकड़ा रोगियों के रोग बढ़ते हैं। दवाइयों से देह में नये २ रोग उत्पन्न होते हैं और उपवास से रोग भस्मीभूत होते हैं। जुलाब लेने से भी शरीर में कुछ कचरा रह जाता है, परन्तु उपवास से रोग जड़ मूल से नष्ट हो जाते हैं।

उपवास करने वाले को जब भूख स्पष्टतया स्वाद से लगती है तब समझना चाहिए कि रोग नष्ट हो गए और आरोग्य प्राप्त हुआ। रोगी को दवाई न देकर उपवास (लंघन) कराना ही अधिक उपकारक है। रोगी के शरीर में अन्न न डालने से बिचारा रोग स्वयं नष्ट हो जाता है। हाथ पैर, शरीरादिको जैसे आराम दिया जाता है, वैसे ही उपवास करके जठराग्नि को भी विश्राम देना जरूरी है। प्रति दिन चलने वाले इञ्जिन को जैसे प्रति सप्ताह एक दिन बन्द करके साफ किया जाता है, इसी तरह उपवास भी आवश्यक परमावश्यक है।

शरीर के घाव उपवास से भर जाते हैं। टूटी [illegible] हड्डियाँ संध जाती हैं। पशु पक्षी भी रोग होने पर खाना पीना छोड़ते हैं, जिस से वे बिना दवाई के शीघ्र निरोगी होते जाते हैं। सात दिन के उपवास से वात (वायु) का, दस उपवास से पित्त का, और बारह उपवास से कफ का रोग नष्ट होता है। पक्षाघात (लकवा) जैसे भयङ्कर रोग भी उपवास से दूर होते हैं। गर्मी की मौसम में तीन दिन उपवास से जो लाभ होता है वह सरदी की मौसम में दो उपवास से हो जाता है।

अमेरिका में उपवास द्वारा रोग मिटाने के उपचार चल रहे हैं और सफल भी हुए हैं। अनेक प्रकार की दवाइयों की चिकित्सा से जो सन्तोष और सफलता नहीं मिली थी वह उपवास चिकित्सा से मिल रही है।



१४–धर्मोपदेश

मानुषिक अशुचिमय भोगों में अज्ञानी मनुष्य इतना आसक्त (गृद्ध) हो गया है, कि स्वर्ग और मोक्ष के सुख की भी परवा नहीं करता है-तुच्छ समझता है, इस से अधिक आश्चर्य अन्य क्या हो सकता है ?

जग जीवों से वैर और शत्रुता का त्याग न कर सको तो कम से कम आप अपने स्वयं वैरी तो न बनें। मानवता की सत्य समझ सद्गुरु समागम और सत्य धर्म प्राप्ति से होती है। सन्त समागम और सत्य धर्म का संयोग मिलने से आत्मा की साक्षात् प्रतीति होती है तथापि अनात्म दशा जड़ दशावत् जीवन जीना शोभा नहीं देता। यह तो सद्गुरु और सत्य धर्म का उपहास करने या कलंक देने समान है। यदि विचार शक्ति है तो सत्यासत्य को विचारें। अकल्याण कर्ता विषय के अन्य जीवों से भी वे अधिक दयापात्र है जो सुसयोग मिलने पर भी उस की उपेक्षा करता है। पूर्वपुन्य पुरुषार्थ से प्राप्त उत्तम संयोगों का सदुपयोग करें। दुर्गति के दातार विषय भोगों का तिरस्कार न करके परम कल्याणकारी जिनवाणी सद्धर्म का तिरस्कार करना-उपेक्षा करना महद् आश्चर्य है।

दुर्गति नगरी में-लेजाने वाले विषय और कषाय का त्याग करना चाहिए।

अज्ञानी पामर जीव सद् गुरु को भी स्पष्ट सुना देता है कि, चाहे सो हो, पर मृत्यु के पहिले स्त्री, धन, विषय, कषायादि का त्याग मेरे से नहीं होगा। अज्ञानी जीव स्वर्ग व मोक्ष के सुखों को तृण्यावत् निरर्थक समझ कर उपेक्षा करता है और भोग के दु खद

फलों का प्रत्यक्ष अनुभव होने पर भी ज्ञानी पुरुषों के वचनों का अनादर करता है ज्ञानी व ज्ञान प्रति वैर वृत्ति पोषण के लिए विषय भोगों का भोग कर दुर्गति का आमन्त्रण देता है।

निद्राधीन जीव चाहे कैसा सुन्दर वाद्य या सुन्दर दृश्य पर ध्यान नहीं दे सकता, वैसे ही मोह निद्राधीन जीव ज्ञानियों के वचन न सुनता है, न समझ सकता है। मनुष्य के धन सुख वैभव में भिन्न प्रति वृद्धि होती है, वह कमाई मनुष्य की कुशलता या कुशाग्र बुद्धि का प्रताप से नहीं होती परन्तु पूर्व जन्म के पुण्य प्रताप से प्राप्त होती है, अतः सुख वृद्धि का आदि बीज-धर्म सम्बन्धी उत्कृष्ट पुरुषार्थ से रक्षा करें। धर्म के शुभ फल साक्षात् प्रतीत होने पर भी उस का इतना अनादर किया जाय तो इससे बढ़कर अन्य क्या अन्याय हो सकता है ?

पुण्य-पाप का प्रत्यक्ष स्वरूप जानते हुए अनजान नास्तिकवत् जीवन बिताया जाय इससे विशेष लज्जा अन्य क्या हो सके ?

इन बातों को जानकर, समझ कर, जीवन में उतार कर धर्म तत्त्व का आराधन-आचरण करना चाहिए, यह ही आत्म श्रेय का प्रधान पथ है।



मार्गानुसारी-विभाग

१—गुणदृष्टि

धर्म मार्ग को अनुसरने वाले में प्रथम गुण दृष्टि-गुणग्राहक वृत्ति-होना आवश्यक है। जगत् का प्रत्येक पदार्थ गुणों से भरा है। बकरी की मैंगनी में गुलाब पुष्प की सुगन्ध के पोषक तत्त्व हैं, गोबर और कूड़े कचरे के खाद में गन्ने के रस पोषक तत्त्व हैं, और कोलसे में शक्कर के तत्त्व होते हैं तो दोष कहाँ से ढूंढें ? समस्त जड़ तथा चैतन्य तत्त्व गुणों के निधान रूप हैं। वैज्ञानिकों ने पत्थर के कोलसा में से सामान्य शक्कर से ८०० गुणी अधिक मीठी शक्कर निकाल दी है। शिल्प शास्त्री पत्थर के टुकड़ों में देव देवी, राजा रानी की आकृतियों देखते हैं। मधुमक्षिका विष्टा में से शहद के तत्त्व खिंच सकती है। गुणी जनों को सर्वत्र गुण और दोषितों को सर्वत्र दोष ही दोष दिखते हैं। गुण ग्राहकता समुद्र समान है, उस में सर्व प्रकार की गुण नदियाँ आ मिलती हैं। वह अपने गाम्भीर्य में सब को स्थान देता है।

आप अपने को पवित्र बनाना चाहते हो तो दूसरों को भी पवित्र मानें। दूसरों को अपवित्र मानने वाला स्वयं अपवित्र है। मानव की आंतरिक गहराई में से स्वभाव (प्रकृति) की परीक्षा बिना किये बाह्य दृष्टि से उसके लिए कल्पना पाशववृत्ति है। बीमार को बीमारी के अपराध से मारना नहीं चाहिए। बीमार हालत में उसके दोष देखे नहीं जाते, परन्तु उपचारक प्रयत्न करके उसे बीमारी मुक्त किया जाता है। बीमार हालत में उसके दोष देखे नहीं जाते, इसी तरह मानसिक बीमार (दोषी अपराधी) उस के

दोषों के लिए दूषित समझ जाना नहीं चाहिए। शारीरिक बीमार की अपेक्षा मानसिक बीमार विशेष दयापात्र और सेवा पात्र है।

सांसारिक अनान युक्त स्वार्थ, व्यवहार न रखकर अपनी खानदानी के अनुसार व्यवहार रखेंगे। पशुओं से भिन्न उच्च प्रकार की अपनी खानदानी मनुष्य को विचारना चाहिए। गुणियों के गुणों को तो पशु भी ग्रहण करते हैं, पर दोषियों से गुण ग्रहण करना मानवता है। मनुष्य चाहे तो गन्दे प्रसंग को सुन्दर सकता है। गुण दृष्टि की ज्वाला में समस्त दोष भस्मी भूत होते हैं। दूसरों को पवित्र रूप से देखने की वृत्ति से बढ़ कर कोई दया, दान या अहोभाग्य नहीं हो सकता। दूसरा में कौन २ से गुण छिपे हैं उसे ढूँढकर बुद्धि से ढूँढो। हम दूसरों के गुण देखेंगे तो दुनिया हमको गुणी बनाने में सहायक होगी। मानव जीवन के विकासकी कुन्जी 'गुण दृष्टि' है। दैवी और शाश्वत नियमों का अनुसरण गुण दृष्टि है और राक्षसी प्रतिरा अनुसरण दोष दृष्टि।

गुण दृष्टि के अभाव में दुःख व्याधि आदि का आगमन होना और दोष दृष्टि के अभाव में सुख सम्पत्ति की वृद्धि होना प्राकृतिक नियम सा है। फलतः गुण दृष्टि परमात्मपद आत्मपद के सम्मुख ले जाती है।

जहां चैतन्यवाद है वहां आस्तिकता और गुण दृष्टि है और जड़ वाद है वहां नास्तिकता और दोष दृष्टि होती है। गुण दर्शी के प्रति सारा ही काल में अनन्त जीव गुण दृष्टि रखते हैं और दोष दर्शी के प्रति अनन्त जीव दोष दृष्टि रखते हैं। दृष्टि बदलने मात्र से नारकीय प्रसंग स्वर्गीय प्रतीत होता है। बाधा के दोष देखना छोड़ कर उसमें रही हुई दिव्यता देखें। अपनी निजात्मा की दया

के खातिर भी किसी के दोष न देख। दोषों में से गुण देखने का प्रयत्न करना ही सत्पुरुषार्थ है। अपने दोष सुधार ने से पहिले दूसरों के दोष देखने का अपना क्या अधिकार है? जहाँ तक हम सर्वत्र गुण नहीं देखते, वहाँ तक हम दोष के भण्डार हैं। सद्गुण के भण्डारी को सर्वत्र गुण ही गुण दीखे।

सब के प्रति परमात्मा समान सम्मान रखना ही सत्य शिक्षण है। शब्द रूप सेंड कुत्ते की तरफ लक्ष नहीं देकर वक्ता के आशय को देखना चाहिए। दोषी को बिना गुण का अनाथ समझ कर हम अपने गुण देकर सनाथ बनावें, तो हम अनाथके नाथ कहे जावेंगे। हम मनुष्य, मनुष्यों में गुण न देख सकें तो अन्य किस तत्त्व में गुण देख सकेंगे? दूसरों के दोष रूप कांटे अपने में चुभाकर निरर्थक दुःखी क्यों होना चाहिए? विश्व की पवित्र मानव भूमि, जो कि मोक्ष भूमि है उसमें दोष दृष्टि के बीज बोकर मोक्षभूमि को निरर्थक नर्क भूमि क्यों बनायी जाय? किसी के विषय में बुरा अभिप्राय बांधना अपने पैरों पर कुल्हाड़ा मारने समान है।

गुण दृष्टि समृद्धि है और दोषदृष्टि कंगालियत। गुणदर्शी का जीवन सुखों की माला समान है। गुण दृष्टि परमात्मा का निवास स्थान है। गुण दृष्टा के चारों ओर प्रेम प्रवाह और दोष दृष्टा की आस पास द्वेष का प्रवाह नित्य बहता है। गुण दृष्टा चोर, कसाई और शराबी में भी परमात्म पद की सत्ता समझ कर सम्मान रखता है। सूर्य को अपने भ्रमण में सिवाय प्रकाश के अन्य कुछ नहीं दिखता वैसे गुणदृष्टि वाले को भ्रमण में, अनुभव में, विचार में, वचन में, वर्तन में प्रेम का प्रकाशझलकता है। गुण दृष्टि समभावी दृष्टि है और स्वर्ग तथा मोक्ष के साक्षात्कार समान है। बिना गुण दृष्टि का जीवन नरक या पशु तुल्य नीच कोटिका जीवन है। पवित्र पुरुष ही गुण दृष्टि पाचन कर सकता है।

गुण दर्शी सदा प्रसन्न होता है और दोष दर्शी सदा द्वेषाग्नि से दु खित होता है। गुण दृष्टि ही साधुता और सत्य धर्म है। गुणदृष्टि वाला आत्म पथ पर चलता है। अशक्त और दुर्बल बालक पर दया भाव से माता का प्रेम विशेष होता है, वैसे दोषी मानव को विशेष दयापात्र समझ कर उसकी विशेष दया, सेवा और सहाय्य करना चाहिए। गुणीजनों को सब सहायता करते ही हैं परन्तु दोषियों की सेवा करने में ही महत्त्व है।

'गुण दृष्टि रक्खो और दोष दावानल को भस्म करो' यही सब शास्त्रों का सार है। गुण दृष्टि सुख का समुद्र है और दोष दृष्टि दुःख का सागर है। गुण दृष्टि का कांग नित्य नजर के सामने रखना चाहिए। गुण दृष्टि से युक्त होने पर अनन्त जीवों से वर विरोध मिट जाता है।

महात्माओं की पवित्रता का मूल्य पापात्मा देते हैं। पापात्माओं की कसौटी द्वारा महात्मा का मूल्य मालूम होता है। जैसे श्रीमन्तों को विलास के साधन गरीबों द्वारा मिलते हैं। वैसे ही पवित्रात्माओं को पवित्रता के साधन पापियों से प्राप्त होते हैं। इस लिए गुण दृष्टि से पवित्रात्मा पापियों का आभार मानते हैं। चोर, हिंसक और पापात्मा न होते तो साहूकार, दयालु और धर्मात्मा का भेद कैसे होता? उनको बहुमान कौन देते? मूल्य का महत्त्व इसी से तो है।

अपना सर्वस्व देकर दोषी की सेवा करना ही गुण दृष्टि है। सहाय्य दें, किन्तु संहार न करें। दोषी के दोष सुधारने में उसे सहायता दें। परन्तु उसे अविक बिगाड़ तिरस्कार न करें। प्रत्येक निराधार वस्तुओं को पृथ्वी आधार देती है, वैसे ही सबको आश्रय

देखर पृथ्वी जैसी महान दृष्टि मानव नहीं रक्खे तो अन्य कौन रखेगा ? गुण दृष्टि ही आत्म प्रगति के लिये परम सुअवसर है।

हिन्दु बालक को चाहे कितना भी लालच दें पर वह किसी पशु पक्षी का घात नहीं करेगा। जब मुसलमान का बच्चा अकारण ही चाहे जिस भी निर्दोष प्राणी को हँसते २ मार डालेगा। कारण यही है कि, हिन्दु बालकों में अहिंसा का तत्व और मुसलमान के खून में हिंसा का तत्व ओत प्रोत हैं। इसी प्रकार आर्य सदा गुण दृष्टि रखता है क्या कि उसकी प्रकृति में वैसे तत्व हैं, जब कि अनार्य की प्रकृति में दोष दृष्टि के तत्व भरे पड़े हैं। आर्यत्व का दावा करने वाले को समस्त संयोगों में गुण दृष्टि का शरण ग्रहण करना चाहिये।

गुण ग्राहकता भवाब्धितारक नौका तुल्य है। दोष दृष्टि पत्थर की नाव तुल्य है। दयाधिदव की पूजा जैसा गुण ग्राहकता का गुण है। दोष दृष्टि के मैल को अग्नि में जलाने से गुण दृष्टि प्राप्त होगी। गुण दृष्टि उदार आत्मा की लक्ष्मी, सम्पत्ति और वैभव है। गुण दृष्टि ही आत्म आराधक दृष्टि है। अन्यथा विनाशक दृष्टि है। क्रोधी को क्षमा का, मानी को विनय का, मायी (कपटी) को सरलता का और लोभी को सन्तोष का दान देना ही गुण दृष्टि है।

वृक्ष की जड़ में पानी का सींचन होने से वृक्ष पत्र, पुष्प फलादि समस्त विभागों को पोषण मिलता है वैसे गुण दृष्टि का सिंचन करने से आत्मा में अगणित गुण प्रकट होते हैं। हम जैसे बनना चाहें, बन सकते हैं। बिल्ली उन्हीं दाँतों से अपने बच्चे और चूहे को पकड़ती है एक में प्रेम और दूसरे में द्वेष है। इसी प्रकार जीव की दृष्टि में गुण ग्राहकता और दोष ग्राहकता हो सकती है।

सहन करने का गुण सबसे बड़ा है। वर्णमाला में सब एक २ प्रकार के अक्षर हैं जब कि 'श' तीन प्रकार के (श ष स) हैं। और अन्त में 'ह' आता है अर्थात् शह, षह, सह होता है। जिस प्रकार 'ह' में वर्णमाला समाप्त होती है उसी प्रकार सब गुण सहनशीलता में समाप्त होते हैं। सोमल सुसिर्मेता पालक, स्कंदक कमठ और चण्ड सर्प जैसे को भी प्रभु ने उपकारक समझें तो दोष किस के देखें? लाखों की सम्पत्ति मिलने से जो आनन्द होता है उससे अत्यधिक आनन्द गुण दृष्टि में है। और लाखों के नुकसान में जो खेद होता है, उससे भी अधिक खेद दोष दृष्टि में है। अपने शरीर पर क्रोध करने से जब वह नहीं सुधर सकता है तो अन्य के ऊपर दोष दृष्टि से क्रोध करने से वह कैसे सुधर सकता है? दोष दृष्टि से शत्रुता पैदा करने में नुकसान है मगर गुण दृष्टि से मित्रता प्राप्त करने में कौनसा नुकसान है? मनुष्य अपनी भूल शायद ही कबूल करता है। अन्य को शिक्षा देने के बजाय निज २ के संसर्ग में आने वालों उन २ से शिक्षाएँ ग्रहण करना चाहिये। गुण दृष्टि यह भविष्य में महान् पुरुष होने का शुभ चिह्न है। अगर आप परोपकार अथवा धर्माराधन विशेष रूप से नहीं कर सकते हो तो सब से गुणों को ही ग्रहण करते रहो। दोष पापी का नहीं किन्तु उसके अज्ञान का है। गुण दृष्टि वाला मनुष्य दूसरों के दोष देखने सुनने और कहने में अन्ध बधिर व गूंगा है। पशुओं से भी मनुष्य विशेष अनुकम्पा पात्र है क्यों कि उनमें हिताहित का ज्ञान होने पर भी तीव्र मोहोदय से ऐसे पापों का सेवन करते हैं। दृष्टि को ऐसी निर्मल बना दो कि जिससे अपना सूक्ष्म से सूक्ष्म दोष भी नेत्र में गिरे हुए रजकण के समान मालूम हो जाय और उसे अप्रमत्त हो शीघ्र निकाल दिया जाय।

७—लघुता ।

अपने दोषों की जांच दूसरों के दोषों की जांच के समान हो तब सर्व दोषों का नाश होता है। स्वमुख से अपनी प्रशंसा करना अथवा अन्य की ओर अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होना उसका नाम है लघुता (तुच्छवृत्ति)।

अपनी भूल का स्वीकार करने से तुम्हारी भूलों का अभाव हो कर तुम स्वयं गुणों का भण्डार बन जाओगे। अपनी राई जितनी भूल को मेरु के समान मानो। अपने एक दोष को दूसरों के सहस्र दोषों से भी अधिक भयंकर समझो। क्षुद्र से क्षुद्र प्राणी सरीखा मैं भी दोष पात्र हूँ ऐसी मान्यता अपने विषय में रक्खो। भूल को स्वीकृत करने की वृत्ति बुहारी (झाडू) के समान है। बुहारी कचर को निकालती है और मकान को स्वच्छ करती है। अत भूल के स्वीकारने में लघुता नहीं, किन्तु आत्मा की पवित्रता ही समझनी चाहिये। निरभिमान वृत्ति किसी पर अपना स्वामित्व नहीं रखती। खुद को छोटे से छोटा मानने में शर्म नहीं है, किन्तु सच्चा सम्मान है। अपनी भूल स्वीकार कर लघुता का स्वीकार करने में बड़ा गौरव है। लघुता करना कर्मों से लघु (हल्का) होने के समान है, मोक्षमार्ग समान है और गुरुता इच्छना कर्मों से गुरु (भारी) होकर अनन्त संसार बढ़ाने तुल्य है (शक्कर और रेत मिली हुई होने पर भी चिंटी शक्कर का स्वाद ले सकती है, पर हाथी स्वाद नहीं ले सकता। वैसे लघुवृत्ति (लाघवता) सत्य तत्त्व प्राप्त कर सकती है, तत्त्व ग्रहण कर सकती है। पर की लघुता और स्व की गुरुता कहने की भूल करने वाली जिव्हा न हो तो भी उत्तम है। जिसमें शिष्य होने की योग्यता नहीं वह गुरु होने

योग्यता आवश्यक है। असमर्थ मेम्बर्स से सेवा लेने वाले से अ सहय आदमियों को सेवा देने वाला बड़ा है। अधिकार की आकांक्षा सब से बड़ा शत्रु है। मान, पूजा की इच्छा दूसरों के मस्तक पर पैर रखकर चलने के समान है। मान, पूजा, सत्कार-सम्मान प्राप्त करने की लालसा जैसा घाट का अन्य कोई व्यापार नहीं है। पर लघुता और स्व-गुरुता करने वालों का जीवन मुर्दे समान सत्वहीन है।

८—निन्दा और निन्दक।

निन्दा करना पीठ का मांस खाने बराबर है, ऐसा शास्त्रकारों ने फरमाया है। योरोप में निन्दा निषेधक सभाएँ स्थापित हो रही हैं। निन्दा करने वाला जीवन्त मनुष्य का लोहू मांस भक्षक राक्षस है, सब से बड़ा पापी है। अतएव शास्त्र में "पिट्ठी मस न खाएज्जा" (पीठ का मांस नहीं खाना) ऐसा फरमान है। अङ्गरेजी में भी निन्दा को Back bite (पीठ का मांस खाना) जैसा तिरस्कृत शब्द प्रयोग किया है। आत्म निन्दा करना पवित्र कार्य है—प्रायश्चित का द्योतक है, आत्म-शुद्धि करने वाला है। दूसरे से अपनी निन्दा सुनकर समभाव रखना विशेषतम पवित्र कार्य है।

किसी के सामने ऐसी बात न करें कि जो बात उसके समक्ष न कही जा सके। पर निन्दक अपनी ही निन्दा करता है। निन्दक को निन्दा करने में कुछ मिनट लगती है, किन्तु सुनने वाले का (जिसकी निन्दा की जाती है) वर्षों तक दिल दुखता है। इससे अधिक भयकर पाप और क्या हो सकता है? दानी दूसरे की कृपणता की या क्षमा शील दूसरे के क्रोध की निन्दा कर वह पाप कृपणता व क्रोध से अधिक है। और उसके दान तथा क्षमा धर्म

का नाश होता है। निन्दा करना अपने ही आध्यात्मिक सद्गुणों नाश करना है। दूसरों की निन्दा करना अपने मुख से अपनी मलिनता जाहिर करना है। सद्भावशाली (महात्मा) ही पर निन्दा करता है। निन्दा करना अपने हृदय पन्ने को निन्दा रूप कैंची से काटना है। निन्दा सुनने वाले और करने वाले दोनों में मलिनता आती है। दोषों के दोष से निन्दा का आरम्भ होता है। स्वदोष छिपाने और परदोष प्रकाश के लिये निन्दा की जाती है। निन्दा करना इस जग में भटकाता है। दूर जमाता है और अन्य को भगाता है। किसी की निन्दा न करना, यमन मात्र से दमन समस्त हुने बराबर है।

रात्रि भी दिन जैसी उपकारक है। सरदी जितनी गर्मी व गर्मी जितनी की वर्षा उपकारक है वैसे निन्दक भी प्रशंसक जितना ही उपकारक है।

अपने निन्दकों को आशीर्वाद दें, क्योंकि आप अपना श्रम नहीं कर सकते उससे अधिक आपका श्रम वे करते हैं अपनी गुलामी की परवा किये बिना वे आपके त्रिविध कषाय (दुर्गुणों) को शोधन के लिये उद्यमवन्त हैं। जहां मनुष्य तुमको धिक्कारते हों, वहां प्रेम पूर्वक जाओ और उन उपकारी पुरुषों (निन्दकों) की कल्याणकारी मदद द्वारा अपने अहंभाव का भगाने के लिये वे जितनी उदार भाव से मदद दें (समभाव से स्व निन्दा सुनो)। निन्दक का आभार मानो क्योंकि वह तुमको अपने आत्म-सुधार दर्शन दरान अक्षय भावना दिखलाता है। जिससे अपने आपको दूर कर आत्म सुधार किया जा सकता है। कोई तुम्हारी निन्दा करता सुनने हो तो अपने आपको परम भाग्यशाली समझो कि बिना परिश्रम के मैं उसके गुण का सहायक बना। यह लाभ तन मन

और धन का भोग देकर अन्य जीवों को प्रसन्न करने का परोपकार करते हैं तो यह निंदक भाई आपकी निंदा करके प्रसन्न होता है। अतः उसकी प्रसन्नता के लिये अपनी निंदा सुन लेने की उदारता व सहिष्णुता रखना चाहिये।

निंदक की निंदा को आप मान लें सच तो वह निंदा करेगा, अन्यथा किस के पास निंदा करता? बधिर को गाली कौन देता है? अन्ध के पास कुचेष्टा कौन करता है? अधिक कटु दवा अधिक रोग का नाश करती है। वैसे अति दुष्ट प्रकृति वाला आपका अधिक हित करेगा। अतएव उसका सत्कार करें। निंदक हमारे लिये सर्चलाइट समान उपकारक है दोषों की चट्टान से टकराती हुई जीवन नौका को बचाता है। निन्दक रूप सर्च लाइट न होती तो अपना निश्चय पतन होता। अन्धकार होने से घर में चोर, कुत्ता आदि घुसते हैं, और प्रकाश होने पर सब भग जाते हैं, इसी तरह निन्दक की रोशनी के भय से पाप रूप चोर कुत्ते भग जाते हैं। सुवर्ण की विशुद्धि के लिये जैसे तेजाब है, वैसे आत्म शुद्धि के लिये निंदक है। किसी से निन्दायुक्त या अपमानित शब्द सुन कर अप्रसन्न होना टेलीफोन द्वारा अशुभ समाचार सुनकर टेलीफोन को तोड़ना ही है। सर्दी गर्मी और वर्षा के लिये किसी पर क्रोध नहीं किया जाता है, वैसे निन्दक के निन्दायुक्त प्रतिकूल शब्दों पर क्रोध न होना चाहिये। स्वयं अपना शरीर भी हमारी इच्छानुसार नहीं चलता तो अन्य किस पर हमारा अधिकार हो सकता है कि वे हमारे लिये रुचिकर बोलें या लिखें! निन्दा प्रति बुरा मनाने से कोई सुधार न होगा, मात्र समभाव रखने में ही श्रेय और सुख है।

६—निन्दक।

अनुरागियों की अपेक्षा टीकाकारों से विशेष लाभ मिलता है। कोई भी शत्रु से अपनी रक्षा नहीं इच्छता किन्तु मित्रों से अपनी घात न हो और रक्षा हो ऐसा इच्छता है। शत्रु अपना थोड़ा समय बिगाड़ता है, जब कि मित्र वर्ग प्रशंसा करके अधिक समय खराब करता है। और आत्मा की घात भी विशेष प्रमाण में करता है। निन्दक और प्रशंसक दोनों हमारी आँख में धूल फेंकते हैं। निन्दक की धूल मिर्च जैसी है जो शीघ्र सावधान करती है और प्रशंसक की धूल सुवर्ण की मिट्टी समान है, सुवर्णरज का प्रहार आँख को अधिक लगता है और इससे आँख को अधिक नुकसान होता है। अतएव आत्मा के लिये निन्दक से प्रशंसक अधिक घातक है। शास्त्रकारों ने अपमान परिषह के विजेता को देश विजयी माना है और मान परिषह के विजेता को सम्पूर्ण विजयी माना है। निन्दा के प्रसंगों में समभाव रखना इतना मुश्किल नहीं जितना कि मान, पूजा और प्रशंसा के अवसरों में। ऐसे प्रसंगों में समभाव का संयम रखे सो वही पूर्ण विजयी है।



६—कर्तव्य प्रकाश

विश्व की समस्त दृश्य पक्ष मानव के सूक्ष्म विचारों के प्रत्यक्ष स्वरूप है, मनुष्य की अदृश्य-शुभ इच्छा शक्ति के सब व्यक्त स्वरूप हैं। यन्त्र, शस्त्र स्टीमर, शहर आदि दृश्यमान पदार्थ मानव की इच्छाशक्ति के व्यक्त स्वरूप हैं कर्तव्य है और कर्म है।

जीवन की शुभाशुभ सब प्रवृत्तियाँ शुभ कर्म और अशुभ कर्म हैं। कुदरत के साम्राज्य में उनकी शाश्वत नोंध रहती है। सुख और दुःख अपने कर्तव्यों द्वारा निर्मित मेहमान हैं। मेहमान के तौर पर दोनों का सत्कार करना चाहिये। कभी जागृति न रही तो वह सुख वैभव और विलास में गिरा कर पतन कराता है। अपना प्राचीन इतिहास देखें तो महापुरुष सुख सम्पत्ति और स्तुति की अपेक्षा दुःख विपत्ति और निन्दा (कसौटी) में ही ज्ञानी, प्रभावशील और प्रगतिशील बने हैं।

कर्मानुसार स्वभाव, स्वभावानुसार इच्छा और इच्छानुसार प्रवृत्ति होती है। वर्तमान समस्त जीवों का स्वरूप राजा रंक, सुखी दुःखी, चींटी और हाथी, आदि चौरासी लक्ष जीवयोनी का स्वरूप यह जीवों की अनेक जन्मों की इच्छाओं का मूर्त स्वरूप है। अधम और अवतारी पुरुष भी अपने पूर्व जन्मों की इच्छाओं का मूर्त स्वरूप है। सब को इच्छानुसार स्वरूप प्राप्त होता है। भूतकालीन इच्छाओं के स्वरूप वर्तमान में और वर्तमान कालीन इच्छाओं के स्वरूप भविष्य में मूर्तस्वरूप धारण करते हैं। जीव स्वयं अपना विश्वकर्मा और विधाता है, जैसा बनना चाहे बन सकता है। वर्तमान के इष्ट अनिष्ट संयोगों के लिये हर्ष खेद, दुःख प्रकट करना व्यर्थ है क्योंकि भूतकाल तो भूत सा है,

यह हाथकी पकड़ म नहीं आसकता। मात्र भावी जीवन रचना अपने अधिकारमें है। स्वर्गीय, नारकीय, पाशविक और मानुषिक, इनमें से जो जीवन प्रिय हो उसे बनाव और वही स्थान प्राप्त कर। उपरोक्त रचनाओं में से जिस को जो पसन्द हो वैसी रचना क लिये अहाराज अविश्रान्त परिश्रम कर। फलत अपनी की हुई रचना प्राप्त होती है। अपनी इच्छा विरुद्ध मनुष्य को कुछ नहीं मिलता इसलिये प्रत्येक कम करने के पहिले कर्म-अकर्म, कतव्य, अकर्तव्य, द्व्नीय अनिन्दनीय का विचार करें और उचित आचरण कर।

कर्म करना अपनी मानसिक शक्ति का प्राकट्य करना ही ह। सभी कर्मों क हेतु होत हैं। विना हेतु कम नहीं हो सकता। वर्तमान में मनुष्य मान-पूजा व धन क हेतु ही कम किया करत हैं।

पाश्चात्यों की गणनानुसार १५० करोड़ मनुष्यों की संख्या है, इनमें १५ करोड़ आकृतियां ही भिन्न २ ह, वैसे ही उनकी इच्छाए भी भिन्न २ हैं। १५० करोड़ में से समान आकृति वाले दो पुरुष या दो स्त्रियों का मिलना (समान होना) मुश्किल है। आकृति म साधारण समानता शायद होगी, परन्तु इच्छाओं में तो आकाश पाताल का अन्तर रहता है। भारतीय मनुष्य कीर्ति क लिये कम करत हैं उसी तरह चीनी मनुष्य भी। किन्तु दोनों क आशय म महान् अन्तर है। चीन क मनुष्य अपनी मृत्यु क बाद होनेवाली कीर्ति क लिये शुभ कर्म करते हैं, उन लोगों में मृत्यु क बाद सम्माननीय पदवियाँ दी जाती हैं। यहाँ की अपेक्षा यह प्रणालिका अच्छी है। वतमान में कई लोग राय बहादुर दिवान बहादुर, रायसाहब आदि पदवियाँ प्राप्त करन क लिये अनेक सच्चे झूठे प्रयत्न या खटपट करते हैं। और उसक मिलने से हर्ष और न मिलने से खेद का परिताप सहन करते हैं। जब चीन देश में पुत्र क अच्छे कार्यों की पदवी मृत

पिता, पितामहादि को मिलती है और मृत पुरुषों के इस प्रकार के सम्मान से धोनी लोग प्रसन्न होते हैं और अपने पूर्वजों के ऋण से मुक्त होने का वे प्रयत्न करने हैं।

यह लोग तो जन्म होते ही अपनी कब्र बांधना प्रारम्भ कर देते हैं और निजी सम्पत्ति का अधिकांश उसमें रखते हैं। जीवन पर्यंत कब्र बनाया करते हैं। बड़ी कब्र से बड़ी महत्ता मानी जाती है। जिससे कि मृत्यु सन्मुख रह और पाप काय से मन शकाशील रहने पावें। इसके बजाय भारत में अपने भोग विलास के लिये बड़ी २ महलात, बाग बगीचे आदि बनाये जाते हैं। इनके बनाने वालों का ध्येय आजीवन विलास ही रहता है। इस प्रकार मनुष्यों की आकृति की भिन्नता के साथ ही साथ उनकी प्रवृत्तियों में भी भिन्नता का अनुभव होता है।

यह लोग असत्य अनीति एवं अन्यायमय पेशा करके उन पापों को धोने के लिये दान करते हैं यह दान नहीं किन्तु ठगाई है। जिस प्रकार कोई चोर चोरी करके उस अपराध से छूटने के लिये सिपाही को घूस (रिश्वत) देता है, इसी प्रकार यह भी शुभ कर्म को घूस देने समान है। अव्वल तो भारत में दान की प्रथा ही कम है, उस में भी वर्तमान में तो सिर्फ मान सन्मान के हेतु ही दान दिया जाता है। दाता दान लेने वाले के पैरों में पड़े और सोचे, कि मेरे सद्भाग्य हैं कि आप सरीखे पात्र के योग से मेरी लक्ष्मी गंगा पावन होती है, अन्यथा दुर्गंधमय हो जाती। कृपा करके फिर इस सेवक को पावन करें। आज कल तो सो रुपये का दान देकर लाख रुपये के मान की इच्छा करते हैं। लाख का दान करना सुलभ है, किन्तु उससे प्राप्त मान का त्याग देना परम दुर्लभ है। दान में देन का नहीं है मगर बड़े से बड़ी लूट (प्राप्ति) है। जिस प्रकार किसान

जमीन में धान्य को बोते हैं सो जमीन को दान नहीं देते हैं मगर उसको लुप्त है। मिट्टी, पानी कदम व खाद से भरी हुई जमीन में बीज बोने से उसके फल स्वरूप एक के स्थान पर सैंकड़ों बीज मिलते हैं, तो फिर मानव समाज के उद्धारार्थ मानव भूमि में दान के बीज बोने से बोने वालों को कितना अलभ्य लाभ होता होगा? खाली कुए में जब भरा हुआ कुम्भ पानी डालता है, तब वह अपनी गर्दन को झुकाता है। वृक्ष भी फल प्राप्ति होने पर नीचे झुकते हैं। उसी प्रकार दाता को भी दान लेने वाले का सम्मान करके खुद के उद्धारार्थ दान देना चाहिये। दान लेने वाला ऋणी नहीं, मगर देने वाला ऋणी है। लेने वाले के प्रताप से ही उसकी लक्ष्मी का अच्छे से अच्छा उपयोग होता है। कर्म कर्तव्य के लिये ही करना उत्तम है। स्वर्ग, सुख या सत्ता की लालसा को छोड़ कर जो पांच मिनट के लिये ही सत्कार्य कर सकता है, उसमें आत्मिक गुणों का विकास करने की सत्ता बीज रूप से रही है। किसी प्रकार की इच्छा फल की आशा-रक्खे बिना सत्कार्य करना ही आत्म संयम की शक्ति का उच्चतम स्वरूप है। बाहर के अनेक व्यापारों की अपेक्षा आत्म संयम बहुत ही उच्च शक्ति है। शुभ कार्य के फल की स्वार्थी भावना निर्मूल होने से मनुष्य विश्व भर में प्रचण्ड शक्तिशाली बन जाता है। फलाशा की स्वार्थमय दृष्टि न रख कर स्वत्नमात्र मय विशाल दृष्टि रक्खो। शत्रु है या मित्र यह विचार किये- बिना उनके श्रेय के लिये तत्पर रहो। अमंद भाव से फल की आशा बिना शुभ कार्य करना असिधारा सम कठिन व्रत है। यही असिधारा व्रत प्रगति के पथ में आगे बढ़ा सकता है।

अपने बच्चे प्रति करुणा, प्रेम और स्नेह बताने वाली बिल्ली दयामूर्ति या प्रेम योगिनी बन नहीं सकती। उसे अपने जीवन में किंचिन्मात्र सफलता भी नहीं मिल सकती। वह प्राणीमात्र के

प्रति अपने बच्चे जैसा मातृभाव रक्खे तो दयामाता हो सके
उस का जीवन सफल हो। इसी प्रकार मनुष्य अपने कुटुम्ब,
स्वजन, स्नेहि पर साथ स्नेह भाव रक्खे और इसी से यदि म
को दयावतार माना जाय तो अपने बच्चे पर दया करने
बिल्ली को भी दयावतार मानना चाहिए। शत्रु तथा मित्र
अभेद भाव से सेवा करने वाला ही शुभ कर्तव्य करता है,
समझना चाहिए।

अपने पास मांगने वाला भिक्षुक हमारी उपकार बुद्धि ज
करके हमें ऋणी बनाता है। भिक्षुक हमको उपकार करने
अवसर देता है अत उसका आभार मानना चाहिए न कि, उ
आभार मनाना या यशोगान कराना। इसमें शोभा नहीं है। भि
द्वारा दातृत्व बुद्धि रूपी सौभाग्य के लिए कृताथ समझे। भिक्षु
की भिक्षा याचना मात्र श्रीमन्तो के उद्धार के लिए उपकारक
तो अनाथ, दया पात्र और ज्ञानपिपासुओं के लिए साधन समर्प
करना श्रीमन्तों के लिए कितना महदुपकारक है? इस बात
विचार करके श्रीमन्तों को अपना कर्तव्य में आरूढ होना चाहिए

हमने परोपकार किया, ऐसा विचार भी अहंकार
पोषक है। परोपकार वृत्ति बढ़ने पर अहंभाव का नाश होता है
जगत में लंगोट मात्र रखकर रहने वाला भी अहंवृत्ति रक्खे ह
वह त्यागी नहीं, संसारी है। और अनासक्त भावना वाले मर
जैसे चक्रवर्ति सिंहासनारूढ होते हुए भी त्यागी है।

पवित्र विचार करना विश्व में अमृत फैलाना है और अपवित्र
विचार करना विश्व में विष फैलाना है। दूसरों को सहाय्य करने
वाला खुद को ही सहाय्य करता है, दूसरों को नहीं। ऐसा करके

यह सुख को सुशिक्षित और असरकारी बनाता है। मात्र यह एक सबक (पाठ) सिख लो भी बस है। अच्छे कर्मों के बदले में अन्य से शुभ कार्य स्वाभाविक होते रहें ऐसी भावना रखना। फल की आशा रहित बुद्धि एक अमोघ शस्त्र है। इसीसे अज्ञान का नाश होता है और उसका अपूर्व आनन्द स्वयं भोग सकता है।

मक्खी घृतादि वस्तु खाने आती है परन्तु उसीमें फँसकर मरती है वैसे ही मनुष्य विषय विलास का आनन्द लूटने उसी में फँस जाते हैं और दूसरों के दया पात्र या हास्यास्पद होते हैं। गये लेने और लिये गये, गये भोगने और भोगा गये, गये मालिक होने पर होगये गुलाम, गये कर्म करने पर कर्म रूप होगये, जीवन के सुख मानने गये और स्वयं भोग रूप होगये। इतना प्रत्यक्ष अनुभव होने पर भी जो सावधान न हो, उसे अपना वैभव विलास के साधन बलात् छोड़कर दीन दुःख में चला जाना पड़ता है, इतना ही नहीं बलात् उसे दूर किया जाता है।

दान, उदारता और सहिष्णुता प्रकट करोगे उससे अनन्त गुणा वैभव मिलेगा। दान उदारता और सहिष्णुता नहीं रक्खें तो भी कुदरत बलात् करायगी। सुख विलास के साधन सदुपयोग में लगावें अन्यथा कुदरत गर्दन पकड़कर छाती पर बैठकर हड़प करेगी। भान न भूल कर कुछ खाने लगो। अनिच्छा से किंचित् मात्र छोड़ने में दुःख है परन्तु स्वाधीनता (स्वेच्छा) से सर्वस्व का त्याग में परम सुख और शांति है। ऐसा कोई मानव नहीं है कि जिसका सर्वस्व कुद-रत ने कभी न छीना हो।

जितना अधिक संचय किया होगा, उस अधिक सम्पत्ति को अन्त समय त्यजते हुए उतना ही अधिक मोह ... । अनेक

होगा, कि हाय! यह सब मेरे सामने होता जारहा है, मेरा कुछ नहीं चलता, विवश हूँ। इस अन्याचार के सामने क्रन्दन, प्रार्थना करना, आक्रन्दन सुनने वाला कोई नहीं है। जिस शरीर को जीवन भर पुष्ट किया, रक्षा की शृंगार किया, अपना ही मान कर आत्म भान भूल कर जिसके लिए अनेक पाप किये, वह भी उत्तर (दगा) दे रहा है। उठने बैठने की शक्ति नहीं रही है और शरीर भार भूत मालूम होता है। सम्पत्ति परम विपत्ति रूप दिखती है। उस समय कनज्य निठुरता जीवन के अत्याचार और पापों का प्रकाश नजर समक्ष आता है। पाप-फल की कल्पना कर कम्पित होता है, सर्वस्व का मोल देकर भी कुछ समय अधिक जीना चाहता है किंतु यह अकारण, दया पात्र, अपात्र आत्मा अपने जीवन की घड़ी बचाने कुदरत के साम्राज्य में अन्य गति में-गमन करता है। इसे दरअसर स्नेहिजन का अश्रु गिराते हैं, चार ताजा पीटते हैं कोई हँसते कूदते हैं और कुछ समय बाद भूल जाते हैं याद भी नहीं करते और जैसा जन्मा ही न था वैसे उनका नाम निशां लुप्त हो जाता है।

शीघ्र योग्योग तो शीघ्र उगता, वैसे शीघ्र दाग तो शीघ्र मिलेगा। अन्यथा मृत्यु समय जाकर वैसे पश्चात् बड़ फड़ाट करना व्यर्थ होगा। स्त्री पुत्र परिवार धन और अधिकार के सड़ दिले सुरक्ष लिए मनुष्य अपने जीवन को भस्म बनाता है और भस्मवत् हवा में उड़ जाता है।

रोग के योग्य शरीर न हो वहाँ तक शरीर में रोग प्रविष्ट नहीं होते। दुःखों को आमन्त्रण बिना दिये दुःख पास में नहीं आ सकते। मुर्दा हुये बिना कौए, गीधादि फाड खाने नहीं आते, वैसे ही जीव अपने सुख दुःख का कर्ता होता है। विचारने पर

मालूम पड़ेगा, कि जीवन में जितनी ठोकर खाते हैं उसकी पूर्व तयारी अपने से हुई थी ऐसा स्पष्ट प्रतीत होगा। इससे सिद्ध होता है कि, बाह्य जगत् हम पर सत्ता नहीं चला सकता, किंतु अंतर तत्त्व की सत्तानुसार-आज्ञानुसार बाह्य जगत् प्रवर्तता है। अगर अन्तर सृष्टि पर सत्ता अधिकार जमावें तो जिस की कोई सत्ता हम पर नहीं चल सके।

हम अपने दोष नहीं देखते, पर अन्य के देखते हैं। यदि हम स्वयं निर्दोष हो तो ऐसे दूषित जग में हमारा जन्म ही क्यों हो? जगत् में सब शैतान है, तो तू भी शैतान है। वरना तेरा जन्म शैतानों में नहीं होता। दूसरों के दोष देखने की कायर (नीच) वृत्ति छोड़ कर दोष देखने की धीर वृत्ति से महावीर बनें।

हम ज्ञान की बात करते हैं, पर प्रसंग आने पर शब्द रूपी कंकर तोप के गोले की तरह हमें धमका देता है और ज्ञान को भगा देता है, इससे अधिक पामरता क्या हो सके? कोई भी मूर्ख मनुष्य हमको अप्रिय शब्द कहकर हमारी ज्ञान बुद्धि को विकृत बना सके राग द्वेष जगा सके, इससे बढ़कर अन्य पामरता क्या हो सके? सियार को मुष्टि प्रहार करने वाले को ही मार लगाता है, सियार को नहीं। तो क्या हम सियार से भी अधिक जड़ है कि छोटे कंकर से हिल जायें निकृष्ट होजायें? हम चैतन्य हैं अतः चैतन्य शक्ति को समझकर अपना कर्तव्य विचारना चाहिये जिससे शुद्ध चेतना जागृत हो।



संसार-स्वरूप

१-संसारासक्त जीवों की मनोदशा।

कोई परोपकारी वैद्य घर घर जाकर निरोग व बीमारों की नब्ज (नाड़ी) देखकर सच्चे भाव से अमूल्य दवाइयाँ देवें तो लोग कहेंगे कि, वैद्य अपने धन्धे की जाहिरात के लिए फिर रहा है और वैद्य की दवाई पर विश्वास कम करते हैं। वैसे ही ज्ञानी परोपकारी पुरुष के स्थान २ विचर कर धर्मोपदेश देने को अज्ञानी जन स्वार्थ समझते हैं और उनके वचन उपदेश का अनादर करते हैं।

भूँड (सूअर) के पास मिष्टान्न धरने पर भी वह उसका स्वीकार नहीं करके भागने मारने दौड़ता है। उसे शंका होती है कि, यह मेरा अमृत आहार विष्टा लेने आया है। इसी तरह संसारी जीवों को विषय कषाय आरम्भ परिग्रह (जो विष्टा से भी अत्यधिक मलीन है) छोड़ने की इच्छा नहीं होती। ऐसा त्याग का उपदेश देने वालों का वे विरोध करते हैं। उनको ज्ञान, दर्शन चारित्र दान शील तप भावनादि अमृत भोजन परोसने पर भी उन्हें विष भोजन समझकर अनादर करते हैं। अज्ञानी बाल जीवों को ज्ञानी के वचन पर विश्वास नहीं आता। श्रद्धा करता भी है तो अपने विषय कषाय तथा आरम्भ परिग्रह की रक्षा करके स्वर्ग या मोक्ष मिलता हो तो उस पर विचार करता है। ज्ञानी के वचनों को मुह से मिथ्या नहीं कहता, इतना उसका उपकार समझें। परन्तु वर्तन से तो ज्ञानी के वचन हलाहल विष हो ऐसी उपेक्षा करता है।

व्याख्यान में अनेक विषय आते हैं। विषयासक्त श्रोता जब व्याख्यान श्रवण करता है और वक्ता (ज्ञानी) जब धन की निःसारता फरमाते हैं उस वक्त उसे वसूली याद आती है। दान का उपदेश सुनते समय लेना याद आता है। ब्रह्मचर्य का उपदेश सुनते समय अपना या पुत्र पुत्री का लग्न याद आते हैं। तप का उपदेश श्रवण के समय जीमणवार याद आता है। पवित्र भावना का उपदेश सुनते समय कचहरी के दाव पेच याद आते हैं। इस प्रकार उपदेश का असर किंचित् मात्र नहीं होता। भरे हुए घड़े में पानी भरा जाय तो ऊपर से चला जाता है, वैसे ही विषय कषाय से भरे हुए हृदय पर से उपदेश बह जाता है कोई असर नहीं होता। उसमें आत्म कल्याण के तत्त्व कैसे ठहरे? धर्म तत्त्व में भी विषय कषाय के तत्त्व मिला कर विषमय बनाया जाता है।

सर्वस्व त्याग कर भी जो धर्मोपदेश सुनता है, वह सुसाध्य रोगी है। अनुकूलता होने पर धर्मोपदेश सुनता है, वह कष्ट साध्य रोगी है और जो मात्र लोक व्यवहार के लिए ही उपदेश सुनता है वह असाध्य रोगी है।

मीठाई खाते २ जैसे चरपरी नीम्बू मिर्च, दाल शाक आदि खाने की इच्छा हो जाती है, वैसे ही धर्मोपदेश सुनते २ विषय-वासना प्रति जीव का चित्त चला जाता है। जैसे गगन विहारी चील की दृष्टि जमीन पर के सड़े मांस पर ही होती है वैसे धर्मोपदेश रूपी गगन विहार करने पर भी विषयासक्त जीवों की दृष्टि विषय रूप सड़े मांस की ओर लगी रहती है। अपथ्य पर प्रेम करने वालों को औषधि फायदा नहीं करती, वैसे ही विषय कषाय के प्रेमी जीवों को जिनवाणी नहीं रुचती। जैसे चोर सिपाही के समक्ष साहूकार जैसा अच्छा बर्ताव करता है और सिपाही के अभाव में

पुन चोरी करके भग जाने का विचारता है, वैसे ही अज्ञानी जीव धम स्थानक में धार्मिकता की सभ्यता रखता है और धर्म स्थया क बाद धर्म स्थानक छोड़ते ही पुन विषय कषाय में दौड़ धूप करता है। रोगादि समय म धर्म भावना का विचार करता है और रोगादि क अभाव म पुन विषय कषाय म लीन होता है।

मनुष्य अपने जीवन रूप नगर मे सदा गुण्य या दोष भरते रहते हैं। बाजारू चीजें खरीद ने के लिये जैसे धन की आवश्यकता है, वैसे ही ससार म सुख दु ख रूपी सौदा क लिए पुन्य पाप रूपी धन की आवश्यकता है। धर्म के शरण बिना आत्मा क्षुद्र भिक्षुक है।

विषय कषाय युक्त भिक्षुक आत्मा का उदर बड़ा है अनन्त काल से उसमें विषय भोग भरने पर भी वह नहीं भरता है। विषय कषाय क योग से आत्मा बुद्धि हीन बनी है। अनन्त काल क विषय भोग क अनक विध दु ख भोगने पर भी सुख के लिये लेश मात्र विचार करता नहीं है। मन वचन काया के अशुभ योग धर्म धर्म धन क लुटेरे हैं तथापि उनका कमाऊ पुत्रवत् आदर किया जाता है। स्त्री, पुत्र धनादि आत्मा क अनादि काल के बन्धन हैं,तदपि उन्हें मुक्ति क कारण मानकर उन पर स्नेह किया जाता है। ऐसी मनोदशा क कारण संसारी जीव अनन्त काल से अनन्त ससार में भवभ्रमण करते हैं।

२—दोष दृष्टि

किसी के स्वभाव के बीच में नहीं पड़ना चाहिये। अपना ■ स्वभाव बदलने ■ स्वयं समर्थ होते हैं, दूसरे सभी चाहें जितने हों। ज्ञानी हो असमर्थ हैं। तो हम किसी का स्वभाव बदलने वाले कौन हैं? किसी का दोष देखना अनधिकार चेष्टा है। कण्टक कण्टक से ही निकल सकता है, वैसे दोषी के दोष देखने में हम स्वयं दोषित होंगे सभी दोष का कांटा दूर सकेंगे। निर्धन और रोगी का तिरस्कार नहीं किया जाता, वैसे ही गुण हीन और दोषी का भी तिरस्कार नहीं करना चाहिये। किसी की टीका या निन्दा करके उसको सुधार ने की आशा कीचड़ से कीचड़ धोने समान है।

कोई वृक्ष मीठे फल देते हैं और कोई कडुवे-तदपि निन्दा या टीका नहीं की जाती, क्या कि वे प्रकृति के आधीन हैं। वैसे ही मानव अपनी प्रकृति के आधीन है तो दोष किनके देखें? सब अपने स्वभावाधीन हैं यह ■ यथा वैसे हो सके? फल लेते समय उसके छिलके, गुठली आदि भी साथ लेना पड़ता है, इसी तरह मानव के दोष रूप छिलके गुठली की उपेक्षा करके उसमें छिपे हुए गुण रूप फल को ग्रहण करना चाहिये। दोषी के दोष नहीं देखते दोष रूप फलका उत्पादक उपादान बीज देखना चाहिए। अपने दोष असम्य और पर दोष क्षम्य समझना चाहिए। अन्य का दोष ■ ■ त्त रखने से पुनः वह दृष्टि गोचर नहीं होता। दोष दृष्टि अपनी ही तुच्छता है। दोषी प्रति माता पुत्रवत् प्रेम रखना चाहिए। दोष दृष्टि वाला आज दूसरों के दोष देखता है, कल मित्र स्नेहियों के दोष देखेगा और क्रमशः यह आदत बढ़कर अन्त उसे अखिल विश्व दोषित दिखेगा है। दोष

य कटक दृष्टि से दूर किये जाँय तो विश्व नन्दनवन दिखेगा और दोष दृष्टि कटक से शाल्मली वृक्ष। विष्टा के पात्र से विष्टा और अमृत के पात्र से अमृत भरता है। वैसे दोषी की दृष्टि से दोष और गुणी की दृष्टि से गुण प्रतित होते हैं।

मनुष्य किसी का दोष दूसरे को कहता है। दूसरा तीसरे को, तीसरा चौथे को चौथा पांचवे को, यों परम्परा बढ़ती जाती है और बिन्दु का सिन्धु होता है। दोष दर्शी क्रमश बिन्दु विषको सिन्धु बना कर विश्व में विष के परमाणु फैलाता है और गुण दर्शी विश्व में अमृत परमाणु फैलाता है। विश्व में सुख का उपादान गुण दृष्टि तथा दुःख का उपादान दोष दृष्टि ही है।

मनुष्य को अपने हृदय का दोष दृष्टि रूप पौधा उखाड़ फेंकना चाहिये जिससे गुण दृष्टि का पौधा बढ़ सकेगा। कलह प्रिय पुत्र का पक्ष लेने वाला पिता उसका अहित करता है। वैसे अपना दोष नहीं निकालते दूसरे का दोष निकालने वाला अपना अहित करता है। हम में जहाँ तक सूक्ष्म दोष हों, वहाँ तक हमको अपना पक्ष नहीं करना चाहिये। दोष दृष्टि हिंसक दृष्टि है और गुण दृष्टि अहिंसक दृष्टि है। दोष दृष्टि गये बिना, दया तथा अहिंसा का पालन नहीं हो सकता। यह मानव दया पालने में असमर्थ है। ऐसा आपात अन्य स्थावर तथा त्रस जीवों की दया कैसे पाल सकता है? आर्य की दृष्टि मांस व दारू से नफ़रत करनी है तो परदोष दर्शन से क्यों नफ़रत न करें? दोष दृष्टि वाले का जीवन विष्टों की माला है। प्रेम से गुण दृष्टि और द्वेष से द्वेष दृष्टि उत्पन्न होती है। दोष दृष्टि में सकुचितता भारीपन है। भारी वस्तु का स्वभाव नीचे जाने का है। गुण दृष्टि में उदारता अर्थात् हलकापन है। उसका स्वभाव ऊंची गति में जाने का है। दोष दृष्टि का जन्म

साथ में से होता है। वह आत्मा के महान स्वरूप का निरमरण कराता है। दोष दृष्टि से ईर्षा, वैर, विरोध, निंदा और अन्य पाप मय भावनाओं का जन्म होता है। दोष दृष्टि वाला परदोष दर्शन रूप बड़ का बीज लेकर अपने में वट वृक्ष बनाने की क्रिया करता है। किसी का झूठा आहार नहीं खाया जाता, तो उसमें अनन्त मलीन भावना का दोष रूप आहार आत्म प्रदेश में किस प्रकार पच या जाय ?

हमें परदोषों सहिष्णु होना चाहिये। परदोष जैसे सामान्य तत्व को जो नहीं सह सकता, वह शरीर की भयंकर वेदना समभाव से कैसे सह सके ? सब के उज्ज्वल पहलू देखो। काला पहलू देखने के लिए अन्धकार में जाना पड़ेगा। भुंड (सुअर) की दृष्टि नन्दन वन में भी विष्ठा ढूंढती है वैसे दोषदृष्टा, परमात्म स्वरूप मानव संसार के नन्दन वन में अनन्त रमणीय मनुष्यों में से भी दोष देखने की बुद्धि रखता है। परधन छिपाने वाला चोर है तो पर गुण रूप धन छिपाने वाला दोष दर्शी, महा चोर है।

सड़े हुए खून को पीने वाली जोंक से भी दोष दर्शी अधमतम है। क्योंकि वह अनन्त दुर्गंध—अनन्त मलीन दोष रूप रस पीता है। किसी के दोष देखना अधमाधम कर्तव्य है। पर दोष न सहना बड़ी दरिद्रता, निधनता और दीन दशा है। और दोष सहकर गुण दृष्टि रखना सर्वोच्च श्रीमन्ताई है।

शरीर के जख्म की मनुष्य प्रेम से सेवा करता है तो दोषी मनुष्य क्या जख्म से भी अधिक घृणास्पद है कि, उसकी सेवा नहीं करके तिरस्कार किया जाय ? जख्म को आराम होने तक प्रेम पूर्वक सेवा की जाती है, वैसे ही दोषी, गुणी न बने वहां तक उसकी प्रेम पूर्वक सेवा करना चाहिये। मनुष्य के दोष नहीं

देखन उसकी अनन्त शक्ति धारक चैतन्य आत्मा को देखो । दूसरे का राई जितना दोष मरुसम और अपना मेरु जितना दोष राई सम माना जाता है, इससे अधिक अपात्रता और पामरता अन्य क्या होसकती है ? किसी का दोष देखना अपने में दोषों को निमन्त्रण देना है । दूसरे के लिये जैसे तुच्छ विचार हम करते हैं इसका प्रतिफल स्वरूप हम दूसरे को अपने लिये हलका विचार करने की प्रेरणा करते हैं । ऐसा एक भी मनुष्य सर्वज्ञ की दृष्टि में नहीं है जो कि अनन्त गुण शक्ति का धारक न हो । परदोष देखने हमारी आँखें बाघ जैसी बड़ी बनती हैं और स्वदोष देखने के लिये मक्खी जैसी छोटी । स्वदोष देखनेके लिये सुदर्शन रखना चाहिये और परदोष देखने के लिये दुर्दिन । स्वदोष दर्शक को परदोष देखने समय नहीं मिलता । नामर्द परदोष देखता है और मर्द वीर महावीर अपने ही दोष देखते हैं । शैतान छिद्र ढूंढता है और सज्जन छिद्र टांकता है । दोष दर्शी सूई का काम (छेद) करता है और गुणदर्शी उसमें गुण रूप धागा पिरोकर उस छिद्र को ढक देता है ।

मानव शरीर में रही हुई पाप दृष्टि की पामरता दूर करें । दोष वृत्ति की पशुता का नाश कर गुण दृष्टि की मानवता आत्मा की भलाई के लिये प्रकटाना चाहिये । घर में कुत्ता, बिल्ली जैसे पशु को भी नहीं घुसने देते, तो आत्मा में दोष दृष्टि रूप भयंकर पशुओं को क्यों घुसाये जायँ ? द्रव्य पशु का इतना तिरस्कार किया जाता है तो आत्मा में उत्पन्न होने वाली भाव पशुता का सर्वदा त्याग करना चाहिए ।

किसीके दोष देखनेके पहले विचारना चाहिए कि हम भी किसी अज्ञान अवस्था में फँसे थे । हम स्वयं इससे विशेष दोषी थे । अपने काँटे से विश्व को नहीं तोलते हुए परमात्म पद के काँटे से तोलना

चाहिए। हमारी दोष दृष्टि हममें तथा अन्य में दोष उत्पन्न करती है। दोष निन्दा, इर्षा, वैर और दोष दृष्टि मानव का जाति स्वभाव नहीं होने से वे जीवन में अनेक विध विघ्न उत्पन्न करके रोगी बनाते हैं। 'कर सो भर' के न्याय से दोष दर्शी अपना पतन करता है। दोष दर्शी के राक्षसी विचार दूसरे से भी राक्षसी परमाणु लाकर अपने में भरता है और गुण दर्शी शांति के सन्देश या दूसरे के शांति के शुभ परमाणु अपने में भरता है। दोष दर्शी को दुगुणा नुकशान सहना पड़ता है। अपने में उत्पन्न हुए अशुभ परमाणु और दूसरे से आये हुए अशुभ परमाणु, इस प्रकार दुगुण अशुभ परमाणु दूसरे के अहित से हमारा दुगुणा अहित करता है। न्यायगर (धूल शोधक) धूल में से भी सोना ढूंढता है, तो उसे मिलता है। वैसे ही मनुष्य जो अनन्त ज्ञान और गुण शक्ति का धारक है उससे जितने गुण ग्रहण करना चाहें ले सक्ते हैं। पात्र अपनी पात्रतानुसार योग्य स्थान लेता है। दोषी दोषों को और गुणी गुणों को ग्रहण करते हैं।



३—संसार शराब खाना

संसार रूप मदिरा मन्दिर में पांच इन्द्रियाँ और विषय कषायों को पोषण मिलता है। इस नशे में संसारी जीव मदोन्मत दिखते हैं। कितनेक स्थावर (एकेन्द्रिय) जीव इस नशे में इतने बेभान हैं कि किसी प्रकार की प्रवृत्ति नहीं कर सक्ते न काया को हिला सकते।

दोइंद्रिय वाले जीव दिन भर ठाँस ठाँस कर शराब पिया करते हैं और अहो रात्रि दौड़ धूप करते हैं। वे इस मद के नशे में न सूंघ सकते हैं, न देख सकते हैं, न सुन सकते हैं, न विचार सकते हैं। तीन इंद्रिय वाले जीव दारू की गन्ध लिया करते हैं। चार इंद्रिय वाले गन्ध लेते और मदिरा मदिर दखते रहते हैं। इसीलिये घूमते हैं, उड़ते हैं। पांच इंद्रिय वाले जीव पाँचों इंद्रियों से मदिरा सेवन करते हैं और इतने मस्त हैं कि उनके मन मर गये हैं। (असंज्ञी-पंचेन्द्रिय) नारकीय जीव नशे में मस्त होकर परस्पर लड़ते हैं, झगड़ते हैं, छेदन, भेदन आदि विविध वेदना सहते हैं।

पशु पक्षी दारू के नशे में अपने हिता हित का विचार नहीं कर सकते तथा माता, बहिन, पुत्री के साथ व्यभिचार करते किंचित् मात्र लज्जित नहीं होते। मुँह से चीत्कार करते रहते हैं, जल में गोता लगाते रहते हैं, आकाश में उड़ते हैं, परस्पर लड़ झगड़ कर अत्यन्त कठिन कष्ट भोगते हैं।

कई मनुष्य शराब के नशे में भान भूल कर पड़े रहे हैं, जमीन पर लोटते रहते हैं। मल मूत्र, लोहू, राद, हाड़ माँस व वात पित्त कफ आदि अशुचि में पड़े रहने में आनन्द मानते हैं, उसी का भोजन करते हैं उसी का पान करते हैं, ऐसे असज्ज्य मानव हैं जिसको सम्मूर्छिम मनुष्य कहते हैं।

मात्र अल्प संख्यक मनुष्य ही ऐसे हैं जो शराब के नशे में नाचते कूदते हैं, खिल खिलाकर हँसते हैं, गाते हैं, नशे में बड़े २ भाषण करते हैं, निरर्थक घूमते फिरते हैं। लोहू राद, हाड़ मांस, मल मूत्र के पुतले पुतली परस्पर चाटते हैं, स्पर्शते हैं, आलिंगते हैं, थूक भरे मुँह से चुंबन करते हैं, आँख, नाक, कान को चाटते हैं,

मांस के टुकडे को अमृत समझ कर चाटते हैं भक्षण करते हैं। समझदार को शर्म जनक बर्ताव करते हैं। असत्य, चोरी, व्यभिचार, विषय-कषाय मय १८ पाप मय प्रवृत्ति करते हैं। नीचाति नीच प्रवृत्ति करने में लज्जित नहीं होते हैं। राज पुरुषों द्वारा पकड़े जाते हैं दंडित होते हैं, सजा पाते हैं तथापि नशे से दूर नहीं होते हैं।

पुनः चार प्रकार के जीव हैं, जो देव कहे जाते हैं। वे विचित्र प्रकार से नशे में चूरचूर हैं। वे नशे में अपनी आंख भी मूंदते नहीं हैं जमीन से ऊँचे चलते हैं सारे दिन गान तान नाटक चेटक करते रहते हैं, नाचते हैं, कूदते हैं, हँसते हैं, रोते हैं, नशे में चकचूर मदिरा में मस्त होकर पारस्परिक ईर्षा व द्वेष करते हैं।

विवेकी महापुरुष शराब खाना (संसार) में रहते हुए भी लेशमात्र शराब न पीते हैं, न सूंघते हैं, न आवाज सुनते हैं, न स्पर्श भी करते हैं और सर्वथा संसारी प्रवृत्ति रहित हैं, वे साधु-मुनिराज आदि महापुरुष हैं। कई पुरुष संसार शराब खाने को छोड़ कर परम सुख मय निज स्थान में पहुँचे हैं, वे सिद्धात्मा। इस क्रम से जीव मद्य की मादक शक्ति बढ़ाता जाता है। ज्ञानी पुरुष परोपकार भावना से नशा न करने को समझाते हैं, किन्तु जिनके अणु २ में मद्य का नशा भरा है, वे ज्ञानियों के वचन का अनादर उपेक्षा तिरस्कार करते हैं। संसार मद्य शाला इतनी लम्बी चौड़ी है कि, उसका आदि और अन्त नहीं दीखता। उसमें संसारी जीव मदोन्मत्त हो कर भटक रहे हैं और अनन्त दुःख भोग रहे हैं। पुन्यशाली आत्माएँ इस मद्य-शाला के मोह से मुक्त होकर मोक्ष मन्दिर के लिए पैर बढ़ाते हैं।

४—छः प्रकार के जीव।

संसार में छः प्रकार के जीव हैं। उन (मानवों) को महापुरुषों ने राजा की उपमा दी है। इनके नाम अधमाधम, अधम, विमध्यम, मध्यम, उत्तम और उत्तमोत्तम।

अधमाधम राजा का स्वरूप—

यह राजा होने पर भी परम भाग्य हीन है। उसे अपने पद का कुछ भी भान नहीं है। परलोक की बातों से वह कोसों दूर है। धर्म का सदा विरोध करता है विषय कषाय रूप विष का अंकुर है। वह बढ़कर विष वृक्ष होता है, पाप समूह का वह घर है उसमें से उदारता पराक्रम, धीरता, शांति आदि सद् गुण भग जाते हैं। वह अपने आत्म तत्त्व को शून्य समझता है। ऐसा विवेक सत्त्व हीन राजा मानव भव की गद्दी पर बैठा है, वह पामर यह भी नहीं समझता है, कि उसे राज्य मिलता है या नहीं। उसे निज धन की मालूम नहीं है अपनी सम्पत्ति का भान नहीं है, आत्म स्वरूप को जानता नहीं है, चोर उसका राज्य लूटता है जिसका उसे भान नहीं है। वह अज्ञानी चोर व दुश्मनों को रिश्तेदार, स्वामी, चाकर मानता है। इससे चोर, लुटेरे हर्ष बधाई मना रहे हैं और कहते हैं कि यह बड़ा दयालु राजा है, जिसने उनको सब राज्य दे दिया है और हमारे अधीन वर्तता है तथा दर्शन चारित्र, दान, शील, तप आदि स्नेहियों को भूल कर हमको परम स्नेहि समझता है।

चार घाती कर्म चार राज्य के सर्वे सर्वा समझे जाते हैं इंद्रिय चोर धन लूटने का स्वर्णावसर जान प्रसन्न हो रहे हैं।

कषाय चोरों को डाका डालने की मौज मिलती है। नो कषाय-लुटेरे लूट व भान द म लीन है। परिग्रह रूप दुष्ट सताने का अच्छा अवसर देखकर खुश होते है। अधमाधम राजा के राज्य मे महा मोह का पहरा लग रहा है जिससे चारित्र व धर्म के सेवकों को प्रवेश ने नहीं देता। उसकी गन्ध भी लेने से सावधानी रखता है। अधमाधम राय नपुसक (सत्वहीन) है, उसके शरीर पर विषय वासना के अनेक विष फोड़ फुन्सी निकल है पाप रूप मल से समस्त शरीर ढक गया है। राजा होने पर भी नौकर का और दास का दास है। नमक, मिर्च, घृत, गुड, शक्कर सोना, चाँदी आदि बचकर अपना पेट भरता है। राज्य भ्रष्ट होजाने पर भी अपनी भ्रष्टता समझता नहीं है। ऐसा राजा पद भ्रष्ट होकर भटकती मे भटकता फिरता है।

अधम राजा का स्वरूप–

लौकिक भोगों म आसक्त, इस लोक मे सब प्रकार की पूर्णता मानने वाला, परलोक की वार्ता को न मानने वाला परलोक विमुख, धम तत्त्वों से उदासीन, शब्द-रूप गध रस-स्पर्शादि विषयों में आसक्त, दान शील तप भावनादि से उदासीन अधमराज है। यह विषय कषाय प्रति स्नेह रखता है, विषय-कषाय की समस्त आशाए उठाता है। इसे भी अपने राज्य का भान नहीं है। सम्यक् ज्ञान नहीं है, परन्तु सत्ता रूप अल्पांश है। यह अधमराज विषय कषाय प्राबल्य क कारण आयु पूर्ण करके नरक में जाता है।

विमध्यम राजा (समदृष्टि) का स्वरूप–

इस राजा का विषय कषाय तथा महामोह से मन्द प्रेम होता है। तदुपरांत चारित्र तरफ भी उसका सद्भाव होता है। चारित्र राज प्रति उसका प्रेम । इस लोक के लिए विचार करता है वैसे

लोक के लिए भी। धर्माराधन के लिए मन से भाव करता है। दान शील तपादि के प्रति रुचि है। धर्म सम्मुख होने के लिए दिन रात यत्न करता है, संसार के भोगों को रोग तुल्य मानता है रोग मुक्त होने की भावना रोगी की होती है, वैसे ही यह राजा अपने जीवन को ससार रूपी बन्दगाने से मुक्त करना चाहता है, यत्न करता है। कैदी बंधन मुक्त होना चाहता है वैसेही यह निम्नस्तराय संसारबंधन से मुक्त होने का प्रयत्न करता है।

मध्यम राजा (श्रावक) का स्वरूप—

यह राजा भाव पूर्वक धर्माराधन करता है संसार में रहते हुए भी अपना लक्ष मोक्ष सम्मुख रखता है। विषय के कटुक फल जानकर उसको घटाने में नित्य प्रयत्न शील रहता है। यथाशक्ति धर्माराधन करता है। संसार को असार समझ कर उसके त्याग की अहोरात्र भावना करता है।

उत्तमराय (मुनिराय) का स्वरूप—

यह राजा अपने राज्य और सामर्थ्य को समझता है अपने गुण दोषों को समझता है। मोह के सैन्य को तथा विषय कषाय को मार भगाता है। संसार का त्याग करके आत्मराज्य के शासन में लीन रहता है। मोह जाल को निखेर देता है, विषय रूप घट को फोड़ देता है, राग द्वेष का पराभव करता है स्नेह पाश को तोड़ देता है, क्रोधाग्नि को शान्त करता है मान पर्वत को चूर देता है, मान बेली को उखाड़ देता है और लोभ समुद्र को तैर जाता है।

उत्तमोत्तम राय (तीर्थंकर) का स्वरूप—

यह राज राजेश्वर स्वयं ज्ञानी, सिद्धांतों के स्थापक, आत्मस्वरूप में लीन होकर मोक्ष पधारते हैं।

५, छः काय सिद्धि

पृथ्वी काय

जैसे मनुष्य के शरीर का घाव स्वयं भर जाता है वैसे ही खुदी हुई खान भी स्वयं भर जाती है। खुले पैर चलने वाले मनुष्य के चर्म घिसते हैं और पूर्ति होती रहती है वैसे ही मनुष्य, पशु, सवारियों के आवागमन से पृथ्वी घिसती रहती है और पूर्ति होती रहती है जैसे बालक क्रमशः बढ़ता है इसी प्रकार पर्वतादि नित्य धीरे २ बढ़ते रहते हैं। मनुष्य को लोह पकड़ना लेना हो जब लोह के पास जाना पड़ता है, परन्तु चुम्बक नामक-पत्थर अपने स्थान पर रहकर चैतन्य शक्ति द्वारा लोह को खैंचता है। मनुष्य के पेट में पथरीका रोग होता है वह सचित्त होने से नित्य बढ़ता है। मछली के पेट में रहा हुआ मोती भी एक तरह का पत्थर है, यह नित्य बढ़ता है। जैसे मनुष्य की हड्डियों में जीव है, वैसे पत्थर में भी जीव है।

अपकाय (जल)—

पक्षी के अण्डे में रहे हुए प्रवाही पदार्थ पचेन्द्रिय पक्षी के पिण्ड स्वरूप है, वैसे पानी के जीवभी एकेन्द्रिय जीवों के पिण्ड रूप है। मनुष्य तथा तिर्यंच गर्भावस्था के प्रारंभ में प्रवाही रूप होते हैं, वैसे ही जल के जीव समझें। जैसे सर्द ऋतु में मनुष्य के मुँह में से भाफ निकलती है वैसे कूए के जल से भाफ निकलती है। मनुष्य का शरीर ठण्डी में गर्म और गर्मी मे ठण्डा रहता है वैसे कूए का जल भी ठण्डी में गर्म और गर्मी में ठण्डा रहता है। मनुष्य की प्रकृति में जैसे ठण्डी और गर्मी है।

वैसे जल की प्रकृति में भी ठण्डी और गर्मी रहती है। जैसे शीत काल में मनुष्य का शरीर अकड़ जाता है, अधिक ठण्ड प्रदेश में लोहू जम जाता है, वैसे ही अपकाय जल अकड़ जाता है। जम जाता है बर्फ हो जाता है। देहधारी बाल, युवा और वृद्धावस्था क्रमशः धारण करते हैं, वैसे जल भी बाफ, बर्फ और वर्षा अवस्था धारण करता है। जैसे मनुष्य देह माता के गर्भ में पकता है उसी प्रकार जल भी छः मास तक बादल रूप गर्भ में रहकर पक्व होने पर वर्षा का रूप लेता है। देहधारी का गर्भ कभी कच्चा गिर जाता है उस पानी का भी कच्चा गर्भ गलता है जिस को गड़े कहते हैं।

तेजस्काय (अग्नि)—

जैसे देह धारी जीव श्वासोच्छ्वास बिना जी नहीं सकता, वैसे अग्नि काय भी श्वासोश्वास बिना नहीं जी सकती है। जैसे ज्वर में देह धारी का शरीर गर्म (उष्ण) रहता है वैसे अग्नि के जीव भी उष्ण होते हैं। मृत्यु होने से मनुष्यादि का देह ठण्डा पड़ जाता है, वैसे अग्नि के जीव भी नाश होने पर अग्नि ठण्डी हो जाती है। जैसे जुगनू जीव के शरीर में प्रकाश होता है, वैसे अग्नि के जीवों में प्रकाश है। जैसे त्रसजीव चलते हैं, वैसे अग्नि भी चलती है फैल कर आगे बढ़ती है। जैसे मनुष्य ऑक्सीजन (प्राण वायु) लेकर कार्बन (विष वायु) निकालता है वैसे ही अग्नि भी ऑक्सीजन खाती है और कार्बन हवा बाहर निकालती है।

वायु काय—

हवा कोसों तक स्वतन्त्रता से चल सकती है। हवा अपने चैतन्य बल से बड़े २ वृक्ष और महलादि को गिरा देती है। हवा

थाग में से बड़ा शरीर बना सकती है। वैज्ञानिकों का मत है कि, हवा में थक्सस नाम के सूक्ष्म जन्तु उड़ते हैं वे इतने सूक्ष्म होते हैं कि, सूई के अग्रभाग पर एक लाख जन्तु आराम पूर्वक ठहर सकते हैं।

वनस्पति काय—

मनुष्य का जन्म माता के गर्भ में अमुक समय रहने के बाद होता है वैसे वनस्पति का जन्म भी पृथ्वी माता के गर्भ में अमुक समय रहने के बाद अंकुरित होती है। जैसे मनुष्य देह बढ़ती है, वैसे वनस्पति भी बढ़ती है, जैसे मनुष्य बाल, युवा, वृद्धावस्था भोगता है, वैसी ही तीन अवस्था वनस्पति की है। जैसे मनुष्य के शरीर को काटने से लोहू निकलता है, वैसे वनस्पति को काटने से विविध रंग के प्रवाही रस निकलते हैं। जैसे खुराक मिलने से मनुष्य देह पुष्ट होता है और नहीं मिलने से सूखता है, वैसे ही वनस्पति को खाद और पानी का खुराक मिलने से विकसित होती है और न मिलने से सूख जाती है। मनुष्य की तरह वनस्पति भी श्वास लेती है। दिन को कार्बन लेकर ऑक्सीजन निकालती है और रात्रि को ऑक्सीजन लेकर कार्बन निकालती है। [illegible] मनुष्य मांसाहारी होते हैं, वैसे कोई २ वनस्पति भी [illegible] आदि छोटे जीवों का सत्त्व पत्तों द्वारा चूस लेती है [illegible] द्वारा मांसाहार करती है। चन्द्रमुखी पुष्प चन्द्र के सन्मुख और [illegible] सूर्य के समक्ष खिलते हैं और उनके [illegible] जाते हैं।

दो तीन, चार और पांच इन्द्रिय वाले [illegible] तो विश्व विख्यात है।

६-मृत्यु।

काल (मृत्यु) रूप सर्प के मुख में समस्त विश्व बैठा है। गले में काल की फांसी लग रही है, मात्र खींचने का विलम्ब है। जिसको आत्म भान नहीं उसे मृत्यु का भान कैसे हो? मृत्यु का विश्वास हो, अवश्यम्भावी समझा जाय, तो आज ही जीवन परिवर्तन हो जाय। भारत में नित्य ४० हजार मनुष्य मरते हैं। भारत में मनुष्यों का औसत आयुष्य मात्र २३ वर्ष का है। इससे अधिक जीनेवाला भाग्य शाली है। प्राणी मात्र जीने की इच्छा में ही मरण शरण होते हैं। अज्ञानी मृत्यु व साधना को जीवन शुद्धि व साधन मानता है। मृत्यु समय पश्चाताप न हो, ऐसा जीवन जीना चाहिए। आज ही मृत्यु होगी, ऐसा मान कर जीवन पवित्र रखना चाहिए। आज मृत्यु हो तो कौनसी गति होए? मृत्यु आज नहीं तो कल ही। सन्तान की मृत्यु से पशु पक्षी बोध नहीं ले सकते, वैसे अज्ञानी भी अपनी सन्तान या स्नेही की मृत्यु से बोध नहीं पाते। प्रति समय मृत्यु घंट बज रहा है, तथापि सुनने के लिए अज्ञानी बहिरा है। घडी घण्टा, वार, तिथि मास पल आदि मृत्यु के पंथ हैं। प्रति समय जीव देह पर काल का असर होता है, पर पामर समझते नहीं हैं।

अनेक अकस्मातों में से होकर १ दिन सुख रूप बीतता है। जहाँ तक पुण्य का उदय है, वहाँ तक अनेक अकस्मातों से बचाव हो जाता है। पुण्याई पूरा होने पर एक छींक, या एक उबासी भी मरण शरण के लिए पर्याप्त है। मृत्यु ही समझ में न आती हो तो स्वर्ग नरक पुण्य पाप आदि कैसे समझ में आवें।

यदि जीवन (जीवित) दशा में ही मरा जाय—'मर-जीया' हाँ तो पुन पुन मरना ही न पड़े। 'मर जीया' पुरुषों के प्रत्येक श्वासोश्वास में स्वरूप लीनता, पद पद में वीतरागता, शब्द-शब्द में गम्भीरता और उदासीनता, स्थान स्थान आत्म स्थिरता पर-भाव में शयन दशा, स्वभाव में जागृत दशा, जीमते हुए अनाहार दशा, पीने में ज्ञानामृत पान दशा, चलने में मोक्ष पथ पर प्रयाण और उठना बैठना भी आत्म धर्म में ही होता है। मृत्यु को अव-श्यम्भावी समझने वाले का जीवन ही उक्त प्रकार का हो जाना चाहिए।

मृत्यु काल जितना दूर माना जाता है, उतना ही कूदते कूदते वह निकट आरहा है। अपना शरीर जितना निकट है, उतनी ही निकट मृत्यु है। दुनिया समझती है कि, जन्म हुआ, परतु ज्ञानी समझते हैं कि जीव गर्भ में आता है उसी समय से मृत्यु निकट हो रही है। मच्छली मार की भांति काल, बाल, युवा या वृद्ध को नहीं देखता। वह तो जाल में जो आते हैं, उनको श्मसान की भट्टी में और वहां से नरकादि भट्टियों में झोंकता रहता है। शरीर रूप कूऍ में से चन्द्र, सूर्य रूप बैल रात्रि दिवस रूप अरहट द्वारा आयुष्य रूप पानी अप्रमाद से क्षण क्षण खाली करते हैं। जिस कूऍ को खाली करने के लिए चन्द्र सूर्य जैसे बलवान बैल हैं उस कूऍ को खाली करने में क्या विलम्ब हो ? मृत्यु समय जीव अशरण बनता है, परतु धर्माराधन वाले जीव-मृत्यु शरण होने पर भी स्व तत्र होते हैं। धर्मात्मा मृत्यु समय में निर्भय और पापात्मा भय भीत होता है।

मृत्यु ही मानव की प्रकृति मात्र का अन्त है। तो भी मानव मृत्यु को भूलने के लिये विषय विलास के नये साधन बढ़ा है मृत्यु को भूल जाता है, परन्तु मृत्यु उसे नहीं भूलती, मानव वर्तमान में जिस अवस्था में है उसी अवस्था में नित्य रहना चाहता है अपनी दशा बदलना नहीं चाहता। अवस्था-दशा का बदलना मानता भी नहीं है। काल हाथ लम्बा कर भेंटने को सामने खड़ा है किन्तु अज्ञानी उसे देखने में अन्ध है। अज्ञानी के लिये मृत्यु भय रूप है और ज्ञानी के लिये मृत्यु मङ्गल स्वरूप है। एक मिनट भी अधिक जीने के लिये कोई आराधना नहीं है और जीवन दीपक जल रहा है। अतः प्रति समय पूर्व पुन्याई का तेल घटते २ जीवन दीपक बुझ रहा है। कमाई खाते में पहुँच पशुवत् मृत्यु सम्मुख होते हुए भी अज्ञानी अपने आपको अमर अमर मान कर नि-सङ्कावता से नित्य पाप प्रवृत्ति बढ़ा रहा है और मृत्यु से सावधान होने की शिक्षा देने वाले सद्गुरु को दीवाना या दया पात्र मान कर पाप प्रवृत्ति से पीछा नहीं हटता।



७—आज का मानस।

विज्ञान के जड़वादी जमाने में वर्तमान मानवों के मानस भी जड़ दिखते हैं। चैतन्यवाद चूर हो रहा है और जड़वाद की इमारतें विविधता से चुनी जा रही हैं। धर्म युग के स्थान पर वर्तमान युग धन-युग 'अर्थयुग' हो रहा है। धन अर्थ के लिये ही वैज्ञानिक साधनों रेलवे, मोटर स्टीमर आदि द्वारा दौड़ धूप हो रही है। अर्थ युग को पहुंचने के लिये इन साधनों की गति दुगुनी चौगुनी बढ़ गाड़ी जैसी मन्द दिखने से एरोप्लेन (वायुयान) का आविष्कार हुआ है। इसकी गति भी मन्द मालूम होती है अतः इससे भी अधिक वेगवान साधनों के आविष्कार की धुन में वैज्ञानिक लोग लग रहे हैं।

जिस वस्तु के पैसे मिलते हैं-बदले में धन मिलता है, उसी को सत्य माना जाता है। जिस वस्तु के पैसे न मिलें उसे मिथ्या, निकम्मी मानी जाती है। मानव की सब शक्ति द्रव्य, कीर्ति व योग्य पदार्थों के संचय में व्यय होती है। धार्मिक प्रवृत्ति सहायक व्यर्थ विडम्बना रूप दिखती है और आर्थिक प्रवृत्ति प्राणदाता सम प्रिय प्रतीत होती है। चैतन्यवाद का पूजक कनक कामिनी और कीर्ति को त्रिविध बंधन समझ कर सांप की कांचलीवत् दूर करता है और जड़वाद का पूजक उक्त त्रिमूर्ति (कचन कामिनी, कीर्ति) के अभाव में चौधार अश्रु बहाता है। विषय विलास और विकार वर्धक उपदेश, वांचन, श्रवण, मनन को उचित समझता है और आत्मवाद के तत्त्वों को विष-मय मानता है। अनीति अन्याययुक्त धनोपार्जी जीवन को वास्तविक, आनन्दमय, समझता है और नीति न्याययुक्त निर्धनता

को दुःख का भण्डार समझता है। विषय कषाय रहित चैतन्य-मय प्रवृत्ति दुर्गंधयुक्त सड़े मुर्दे जैसी दुर्गन्धी और विषय कषाय युक्त प्रवृत्ति प्राणप्रिय समझी जाती है। विषयकषाय युक्त प्रवृत्ति के लिये जीव अविश्रान्त यत्न करता है मृत्यु की भी परवाह नहीं करता। धर्म तत्त्व को पदधूलि से भी अधिक हेय समझता है और धार्मिक क्रिया, धर्म गुरु धर्म शास्त्रादि को सड़ी हड्डियों का पिण्ड सम अवांछनीय समझता है। अधार्मिकता को योग्य प्रवृत्ति और जीवन मानते हैं। अपनी सब शक्तियाँ धनोपार्जन में लगाकर अपने आपको सफल समझता है।

सुख, आनन्द, ऐश आराम और मौजशौक में चैतसीय, भाग्यहीन और नालायकों के प्रिय ही धर्मतत्त्व समझा जाता है। धार्मिकता के त्याग में ही अपना उद्धार माना जाता है। धार्मिक प्रवृत्तियों को शुभ भरी मूर्खता और अधोगतिका द्वार माना जाता है।

जड़वाद के चश्मको उतारकर आत्मवाद दृष्टि से देखा जाय तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि धर्म तत्त्व को जड़ मानने वाला स्वयं जड़ है। धर्म की शरण से ही भविष्य में विशेष उज्वलता मिलेगी धर्म भावना के अभाव में ही दशका पतन दिखता है। समस्त राज्य और साम्राज्य भयभीत हैं, समस्त राजा महाराजाओं के सर पर कोहिनूर के नहीं किन्तु कांटे वाले ताज हैं। व्यापक विनाशी विषमय जहरीले गैस, बम्बगोले, लड़ाकू हवाईजहाज एवं जल जहाजों की धूमधाम से तैयारियाँ हो रही हैं। सब राज्यों के जीव मुट्ठी में हैं। आज शांति है कल की कुदरत जान। स्त्रियों के लिए भी लाजमी भर्ती के कानून बन चुके हैं, इन्कार होने वाले के लिये फांसी के मंच तैयार हैं। लाखों मनुष्य भूगर्भ में

छिप कर [illegible] सकें ऐसे गुप्त भूतल बनाये गये हैं। जहरीले गैसों से भवन के जिन सारों टोपियों का संग्रह किया गया है। ७० लाख की आबादी वाला लंदन कुछ घण्टों मे खाली करने की योजना विचारी जा रही है। आकाश मे उड़ते हवाई जहाजों को पक्षी की तरह गिराने वाले तोप गोले तैयार हो रहे हैं। हवाईजहाजों को कागज की तरह आकाश में ही भस्मीभूत कर देने वाले किरणों का आविष्कार किया जा रहा है। पारधी पक्षी को जाल मे फंसाता है इसी तरह हवाई जहाजों को फँसाने की जालें गूथी जा रही हैं। यह प्रताप धर्म का या अधर्म का ?

धर्म के प्रताप से शांति और शीतल छाया है, इसके अभाव मे दावानल और ज्वालामुखी की ज्वालाएं तैयार होती हैं। बिना धर्म की प्रवृत्ति में पर रचना या विचारमात्र करना मानव धर्म का अपमान तुल्य है। सत्य, पवित्रता और निस्वार्थता, ये तीन बल त्रिलोक को हिला देने समर्थ हैं। धर्म भावना वाला निर्बल के लिए आशीर्वाद और तीर्थ यात्रा समान है, इससे विपरीत शाप समान है। धर्म शाश्वत जीवन की शांति के लिये पाताल कूप है। पाताली कुँए का सुख शांति रूप शीतल जल कभी नष्ट नहीं हुआ है, न होगा। जड़वादी समाज आत्मवाद का शरण लेगा तभी वह शरणभूत होगा। अन्यथा विकास के नहीं किन्तु विनाश के पथ पर है।



८—जड़वादी आत्माओं का स्वरूप।

आत्मतत्त्व चन्द्र सूर्य से भी अनन्त गुणा अधिक प्रकाशित और सब से अत्यधिक नजदीक होने पर भी उसका अस्तित्व का भान अनुभव में नहीं आता। शरीर के लिये चन्द्र सूर्य से भी अधिक प्रकाशित चक्षुओं का उपयोग किया जाता है, परन्तु आत्मतत्त्व के दर्शन के लिये जुगनू जितना प्रकाश भी जड़वाद के आवरण के कारण अनुभव में नहीं आता।

मनुष्यों अन्य विषयों में बहुत जानते हैं किन्तु अपने विषय में कुछ भी नहीं जानते हैं। अनेक विषय में प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं, मात्र अपने निजात्म का उत्तर देने में सर्वथा असमर्थ है। लाखों मिल दूर के प्रदेशों की खबर मालूम है किन्तु सब से निकट शरीर से भी अत्यन्त निकट ऐसा अपने आत्म तत्त्व का किंचिन्मात्र भान नहीं है। जल, स्थल और गगन विहार करके कावड़ अनेक अनजान प्रदेशों का अवलोकन किया और कर रहे हैं, परन्तु खुद के आत्म प्रदेश को देख न सका। लाखों मिल दूर बैठ रेडियो के वायरलेस द्वारा बात चीत हो रही है, वहाँ की जनता के सुख दु:ख के समाचार पूछ जा रहे हैं। इतने दूरस्थ मनुष्यों से सम्बन्ध बांध रखता है, परन्तु आत्मा खुद के साथ सम्बन्ध बांध नहीं सका है, आत्मा खुद के सुख दु:ख का विचार मात्र नहीं कर सका है, न अपनी निजात्मा से लेश मात्र सम्बन्ध जोड़ सका है। इससे अधिक आश्चर्य और नास्तिकता अन्य क्या हो सके?

तीन लोक का राज्य करने का यत्न कर रहा है, परन्तु अपनी आत्मा पर राज्य करने का यत्न नहीं करता। तीन लोक के भाव जानने की आतुरता है अत: उन्हें जानने देखने के लिये लाखों का खर्च करने को तैयार है मात्र उसे निज आत्म भाव जानने सुनने

की प्रकार नहीं है कोई आत्म भाव कह-सुनावे तो जानने सुनने की इच्छा भी नहीं होती। मनुष्य में अखिल विश्व को वश में करने का प्रयत्न होता है परन्तु खुद अपने को वश में नहीं कर सकता। विश्व के साथ मैत्री करना चाहता है और निजात्मा से वैर बुद्धि बढ़ाता है। विश्व को दर्शन की आतुर इच्छा है पर निजात्म दर्शन के लिये क्या दशा रहता है। तीन लोक के जीवों की चिंता व पंचायत करता है और अपना निजात्मा का लेश मात्र भान नहीं है।

रेडियो, वायरलेस, बिजली, भाफ, रेल्व, मोटर, स्टीमर एरोप्लेन आदि अनेक आविष्कार हुए और हो रहे हैं। परन्तु अपनी आत्मा का आविष्कार न किया। जड़ पदार्थों की प्रगति की परन्तु अपनी प्रगति न कर सका। विश्व को दयापात्र समझ कर उसकी दवाई करने का यत्न करते हैं, परन्तु अपनी दया नहीं है तथा अपने लिये दया का विचार भी नहीं है। विश्व को सुखी रखने की तमन्ना वाले को अपने सुख का तो भान नहीं है। मलीन में मलीन पदार्थ को उपयोगी-लाभदायक माना है और उसकी रक्षा के लिये लाड़ की जाती है, परन्तु खुद को निरर्थक निरुपयोगी माना जाता है तो रक्षण के लिये बात ही क्या हो? करोड़ों और अरबों के हिसाब किये परन्तु अपने एक का हिसाब न किया, न अपने हिसाब का पक्का जिसने को पाटी पन हाथ में लिया। लेना आता नहीं है, पसन्द भी नहीं है।

बढ़े हुए सिर के बाल या हाथ पर के नाखून जितना भी आत्म तत्त्व को मान देने में आवे या स्मरण मात्र किया जाय तो "मैं कौन हूँ? कहां से आया हूँ और कहां जाऊंगा?" इसका भान सदा होता रहे। छोटे से बड़े समस्त दुनियावी पदार्थों के लिये अ

नन्त कष्ट सह जाते हैं और महात्मा के साथ प्रमाद किया जाता है। शरीर के नाश के साथ आत्मा का भी नाश माना जाता है।

बड़ौदे के अजायब घर में २००० वर्ष का पुराना मृत देह (मुर्दा) है। उसे देखने के लिये हजारों मनुष्य हजारों कोसों से हजारों रुपयों का खर्च करके आते हैं, परन्तु उसे सम्यक् प्रकार से देखने के लिये आंख भी नहीं खोलते।

स्थूल भाषा में कहें तो आत्मा जीव योनि में भ्रमण करती है और आध्यात्मिक भाषा में कहें तो भिन्न २ मानसिक भूमिका में भ्रमण करती है और करेगी। मानसिक भूमिका के अनुरूप आत्मा विविध जीवयोनि को प्राप्त होती है, किन्तु जड़वाद के मनन से आत्मा अपना भान भूला होने से अपने अस्तित्व का भी भान नहीं है। इससे चैतन्य होने पर भी जड़वत् जीवन बिताकर जड़ जैसी (स्थावर) जीवयोनि में जन्म धारण करके मानव भव के महत्व शाली पद को हार जाता है। ऐसा न हो और मानव की श्रेष्ठता समझ कर उत्तरोत्तर प्रगति के लिये आप अपने ही चौकीदार बनें और अपनी आत्मा को ढूंढें।



६–नारकीय यातना

नरक कैसा है ? उसकी वज्रमय दीवार है बहुत चौड़ी है अगृह (बिना सांध की) है, बिना द्वार की है, कठोर, भूमितल वाली है, कठोर कर्कश स्पर्शवाली है ऊंची नीची विषम भूमि है बन्दीखाने (Jail) जैसी है । अत्यन्त उष्ण, सदा तप्त दुर्गंधयुक्त अशुभ पुद्गल वाली उद्वेग जनक भयंकर स्वरूप वाली है । ये नरक कुछ शीतलता में हिम व पटल जैसे, काली कांति वाले, भयंकर गहन गहन रोमांचकारी हैं, अरमणीय हैं । असाध्य रोग और जरा से पीड़ित नारकीय जीवों का यह निवासस्थान है । वहां सदा तिमिर गुफा जैसा अन्धकार व्याप्त है, और परस्पर भयभीत रहते हैं । वहां चन्द्र, सूर्य, ग्रह नक्षत्र, तारा आदि नहीं है । नारक गृह चर्बी, मांस, रुधिर, लोहू से मिश्रित, दुर्गंधमय, चीकन और सड़ कीचड़ से व्याप्त हैं । वहां खैर की लकड़ी के अग्नि जैसा ज्वलमान और राख से ढका हो वैसा अग्नि है । उन नरक महां का स्पर्श तलवार, छुर करवती जैसा तीक्ष्ण, एवं बिच्छु के डंक जैसा अति दुस्सह है । ऐसे नरक में जीव रक्षण बिना, त्राण बिना, शरण बिना, कड़ुवे दुःख से पीड़ित होता हुआ पूर्वोपार्जित अशुभ कर्म भोगता है । नरक परमाधामी देव (जमदूत) से भरा है । जमदूतों के द्वारा नारकी जीवों को अन्तर्मुहूर्त में वैक्रिय लब्धि द्वारा बदसूरत, भयानक, हड्डी नख-नाखून रोम रहित देह बनाते हैं जिसके द्वारा अशुभ वेदनाएं भोगते हैं । यह वेदना अत्यन्त कठोर प्रबल, सब शरीर व्यापी चित्त-वाणी व देह में व्याप्त, अन्त तक निरंतर रहने वाली है । वे वेदनाएँ तीव्र कर्कश, प्रचण्ड, भयानक और दारुण कैसी ? सो अब कहते हैं ।

लोहे की बड़ी कढ़ाई में पकाना, भूँजना, कड़ाई में तलना, भट्टी में भूनना, लोहे के बर्तन में उबालना, बलिदान देना (गर्दन उड़ा देना), खांडना, चीरना फाड़ना, सिर को पीछे झुका कर बांधना, ऊंचा लटकाना, हन्टर मारना, गले में फांसी डाल कर झुलाना, शूली पर चढ़ाना, आज्ञा देकर ठगना, अपमानित करना, वधभूमि पर ले जाना, टुकड़े २ कर देना, जमीन में गाड़ना आदि अनेक विध कष्टों से पूर्वसंचित कर्म द्वारा जीव नरक में पीड़ा पाते हैं।

नरक क्षेत्र की अग्नि महा अग्नि दावानल सी है। उसकी अति दुःसह, भयप्रद, अरमता जनक, शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की वेदना भोगते हैं। पल्योपम और सागरोपम के आयुष्य तक विचार सहते हैं।

परमाधामी देव नारकों को त्रास उपजाते हैं, जब नारकीय जीव बड़े करुण आक्रन्दन से भयभीत स्वर से कहते हैं कि "हे अत्यंत शक्तिमान, हे स्वामिन्, हे तात, मा बाप, मुझे छोड़िये, मैं मरता हूँ, मैं दुर्बल हूँ, व्याधि पीड़ित हूँ" ऐसा बोलते २ वे दया रहित परमाधामी की तर्फ दृष्टि करता है कि वे न मारें। वे कहते हैं "मुझ पर कृपा करके क्षण भर के लिये श्वासोच्छ्वास लेने दें, मुझ पर रोष न करें मैं क्षण-मात्र विश्राम ले सकूं इसलिए मेरे गले का बंधन छोड़िए, नहीं तो मैं मर जाऊँगा। मुझे बहुत प्यास लगी है अतः पानी पीने दें।" उस वक्त परमाधामी उन नारकों को 'ठंडा निर्मल पानी पी' ऐसा कह कर उसका मुँह फाड़ कर सीसे का अग्नि प्रवाही रस डालते हैं, इस कारण से नारक जीव कम्पित हो जाते हैं और अश्रुपात करते हुए कहते हैं कि 'मेरी तृषा नष्ट होगई अब पानी पीना नहीं है। ऐसा बोलते २ नारकी चारों ओर दृष्टि

मुद्गर, मुसुंढी, करवत, त्रिशूल, हल गदा, मूशल, चक्र, भाला बाणा, शूली लकड़ी, कुर्री, लम्बा भाला, नाल, चमड़े में मढ़ा हुआ पत्थर मुद्गराकार हथियार तलवार, तीर, लोह का बाणा, कतरनी बसोला परशु आदि अति तिक्ष्ण, उज्ज्वल चमकीले अनेक प्रकार के भयकर शस्त्र विकुर्वण कर (वैक्रिय बनाकर) और सज्जकर पूर्व भव के वैर भाव से नारकों को महा वेदना उपजाते हैं। मुद्गर के प्रहार से चूर्ण कर डालते हैं, मुसुंढी से भांगते तोड़ते हैं देह को कुचलते हैं यन्त्र में पीलते हैं, तड़पते देह हथियारों से काटते हैं चमड़ी उतारते हैं, कान ओष्ट नाक को मूल में से काट डालते हैं हाथ पैर छेदते हैं, तलवार, करवती नौकवाला भाला, और परशु के प्रहार से नारक देह को काटते हैं। बसोला से अंगोपांग को छेदते हैं। गरमागरम क्षार के छिड़काव से गात्रों को जलाते हैं भाले की नोक से शरीर जर्जरित करते हैं। जमीन पर पटक कर रगड़ते हैं। इससे नारकों के अंगों पांग सूक जाते हैं।

पुनः परमाधामी नरक में नाहर, कुत्ते, बिल्ली कौए, श्याल चित्ते बाघ सिंह आदि के रूप बनाकर नारक जीवों को पैरों के बीच रखकर तीक्ष्ण दांतों से मारते हैं खींचते हैं, तीक्ष्ण नाखूनों से फाड़ते हैं, चीरते हैं। परमाधामी देव कौए, गीध, कंकादि पक्षियों के रूप बनाकर अपनी वज्रमयी तीक्ष्ण चोंचसे पीड़ा उपजाते हैं, आंख फाड़ते हैं चमड़ी उधेड़ते हैं इत्यादि अनेक प्रकार की पीड़ा नारक जीव भोगते हैं और अपने पूर्व भव के पाप के लिए पश्चात्ताप करते हैं तथा स्वयं निजात्मा की निंदा करते हैं, तथा पाप के अशुभ फल बिना भुगते छुटकारा होता नहीं है।

(श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र के आधार से)

तत्त्व विभाग

१—नव-तत्त्वों का स्वरूप

ज्ञानी पुरुषों ने समस्त संसार को नव तत्त्वों में बांटा हुआ है। (१) जीव [चैतन्य], (२) अजीव [जड़], (३) पुण्य [शुभ कर्म] (४) पाप [अशुभ कर्म] (५) आस्रव [कर्मों का आने का हेतु], (६) संवर [कर्म आगमन का रुकना] (७) निर्जरा [कर्मों का देश से पृथक होना], (८) बंध [जीव के साथ कर्मों का बंधना] (९) मोक्ष [सम्पूर्ण कर्मों से मुक्ति]

इन तत्त्वों का सूक्ष्म दृष्टि से क्रमशः निरूपण किया जायगा।

जीव तथा अजीव

वर्तमान युग में विज्ञान ने रेडियो, मोटर, स्टीमर, टेलीफोन, तार डाक, रेडियो, ग्रामोफोन, वायरलेस, बिजली, बम, फोनोग्राफ आदि के विविध आविष्कार किये हैं। यद्यपि वैज्ञानिक लोग अपने आपको विज्ञान के पारगामी सच्चे समझ कर नए नए आविष्कार कर रहे हैं और करते रहेंगे।

परन्तु वैज्ञानिक एकत्र होने पर भी वे बड़ के बीज जैसी प्राकृतिक छोटी सी वस्तु बना नहीं सकते। आगगाड़ी इंजिन और एरोप्लेन से भी बड़ के १ छोटे से बीज में अनेकगुनी अधिक शक्ति है। बड़ के बीज में केवल थोड़ा बीज ही नहीं परन्तु बीजों के विस्तार वाले झाड़ों सम्पूर्ण अन्तर्गत है। यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध होने से विशेष विस्तार अनावश्यक है।

आम्रों पंजिर और मरोब्बर जमीन में गाड़ दिये जायें तो सब मिट्टी में मिट्टी रूपया मिल जायगा, किन्तु बड़ का बीज को जमीन में रखने से विशाल वट वृक्ष खड़ा होजायगा। क्योंकि, उस छोटे से बीज में चैतन्य सत्ता है और बड़े २ पंजिर जड़ है। इसी कारण वे अपनी प्रकृति विकास में असमर्थ हैं।

४० तोले के एक पानी के गिलास में ६००० टन कोयले की शक्ति है। इस हिसाब [illegible] १ रत्ती पानी में सवा टन अर्थात् पैंतीस मन कोयले की शक्ति है। ४० तोले पानी की बिजली की शक्ति से एक विशाल स्टीमर हजारों मीलों की यात्रा कर सकती है ऐसा विज्ञानियों का मत है। वट के बीज में और पानी की बून्दों में आ कि स्थावर जीव है उनमें इतनी शक्ति है तो मनुष्य में कितनी शक्ति हो सकती है? इसका अनुमान सहज में ही लग सकता है। प्राणी का स्वभाव ज्ञान मय है। इसी मानवीय शक्तियों के द्वारा विज्ञानियों ने आविष्कार किए हैं। उन्होंने जड़वाद का विकास किया है। वैसे ही मनुष्य अपना आत्म विकास कर सकता है।

सातवीं नरक का परमाणु समय मात्र में सिद्धशिला में आ सकता है। इतनी शक्ति जड़ की है तो चैतन्य की अनन्त गुणी विशेष शक्ति होना स्वभाविक है।

सब जीवयोनियों की अपेक्षा मनुष्य में उत्कृष्ट शक्ति है। उस उत्कृष्ट शक्ति का सदुपयोग धर्माराधना में करना चाहिए।

कलाकार पत्थर को काट छांट कर उसमें से इच्छित प्रतिमा बनाता है, उसी प्रकार मनुष्य जीवन का आशय विषय कषाय से दबी [illegible] शक्ति को प्रकट करने का है और उसी आशय से 'आत्मा ही परमात्मा' यह वचन ज्ञानियों ने कहा है। मनुष्य जैसा बनना चाहे वैसा बन सकता है। वह सर्व प्रकार से शक्ति सम्पन्न है। अनन्त ज्ञान तथा बल का अधिकारी है। जीवन का विकास केवल मानव भव में ही हो सकता है।

पुण्य—

शीतल चन्दन से उत्पन्न हुई अग्नि शरीर पर पड़े तो वह शरीर को जलाती है। इसी प्रकार प्राप्त पुण्य से अगर धर्माराधन न किया जाय तो वह चन्दन से उत्पन्न हुई अग्निवत् दुःख-दायी है।

एक भिखारी पुण्योदय से धनी हो जाय तो वह पहले की अपेक्षा विशेष भोगमय जीवन बितायेगा और विशेष पाप कर्म उपार्जन करके विशेष दुर्गति का अधिकारी होगा। इसी प्रकार पूर्व जन्म के पुण्योदय से प्राप्त सम्पत्ति का विश्व की भलाई के लिए उपयोग न करके केवल अपने ऐश आराम में उपयोग करने वाला पाप का उपार्जन करके सद्गति का अधिकारी नहीं हो सकता। ऐसे पुरुषों के शास्त्रकारों ने पापानुबन्धी पुण्य वाला माना है। अर्थात् धन, वैभव उसको पुण्योदय से प्राप्त हुआ है, किन्तु उसका धर्म कार्य में उपयोग न करने से वह साधन उसको पाप में अधिकता का देते हैं, और वह पाप के कारण दुर्गति का अधिकारी हो जाता है। धर्माराधन न कराने वाली पुण्य से प्राप्त धनाढ्यता से शास्त्रकारों ने निर्धनता, दीनता विशेष जीवनोपयोगी श्रेष्ठ मानी है। ऐसे जीवों को पुण्यानुबन्धी पाप मानने में आता है। पापोदय से वह निर्धन हुआ, किन्तु निर्धनता से वह ऐश आराम तथा विलास मय जीवन नहीं बिता सका और अपने स्वाभाविक सादगी मय जीवन को बिता कर वह विशेष पाप से बच सका। इसी कारण से कितने ही सद्गति के अभिलाषी राजकुमारों तथा श्रेष्ठ पुत्रों ने दूसरे जन्म में निर्धन होने के लिए भावना भायी थी। निर्धन होने की ही इच्छा (नियाणा) उत्तम नहीं गिनी जा सकती। जो पुण्य से होने वाली सम्पत्ति, धन वैभव सुख-सामग्री धर्माराधन में साधन

है वही पुण्य है। जो पुण्य धर्माराधन में साधक नहीं होवे और केवल विषय विलास, ऐश आराम में ही उपयोगी हो, ऐसा पुण्य भविष्य एवं परलोक दोनों के लिए भी परम दुःखदायी है। पुण्य की सामग्री से धर्माराधना करे उस जीव को पुण्यानुबंधी पुण्य का उदय मानने में आता है। जो निर्धन मनुष्य धर्म आराधन न करता हुआ विषय विलास के लिए रात दिन तड़फता रहता है ऐसे मनुष्य को पापानुबंधी पाप का उदय समझना चाहिए।

पाप—

सज्जन सुपथ पर एवं दुर्जन कुपथ पर ले जाता है, इसी प्रकार शुभ कर्म सुपंथ पर ले जाता है एवं अशुभ कुपथ पर। पाप मय प्रवृत्ति ही कुपथ है। जब एक ही बार दुःखदायी विषैला जन्तु या जहरी पदार्थ से सावधानी रखी जाती है तो अनन्त भवों में दुःख देने वाले पाप रूप विषैले जन्तु से कितनी सावधानी चाहिए, यह स्वयं ही समझा जा सकता है। ज्ञानी पाप को सिंह, सर्प एवं अग्नि वत् भयंकर समझ कर उस से सावधान रहता है और अज्ञानी उस से सहर्ष भेंट करता है। एवं असीम पीड़ा का भागी बनता है।

हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, धन-लोभ आदि पापों से भी क्रोध, मान माया एवं लोभादि महान् पापों का कटु फल भोगना पड़ेगा, यह विचारणीय है।

इस लोक में पापी जीवों के लिए अल्प समय पहले ६०० प्रकार की तरसा तरसा कर मार डालने वाली त्रासदायक फांसी दन में आती थी। इससे भी अनन्त गुणी विशेष सजा पापी को नरक में भोगनी पड़े यह स्वाभाविक है।

नारकीय जीव नरक में से बाहर निकलने के लिए कोलाहल करते हैं वैसे पापी जीव पाप मय प्रवृत्ति से नरक में प्रवेश करने के लिए कोलाहल करते हैं।

नारकीय जीव नरक की यातना भोगकर बाहर निकल रहे हैं और पापी जीव पाप करके उसमें प्रवेश करते हैं।

जिस प्रकार अग्नि राख में दबी हुई होने से नहीं दिखाई देती किन्तु फिर भी अपना स्वाभाविक रखती है उसी प्रकार पुण्य रूपी राख में पाप रूप अग्नि दबी हुई होनेसे पाप के कटुफल वर्तमान में दिखने में नहीं आते किन्तु पुण्य पूरा होने पर पाप प्रकट होता है। और उसके परिणामस्वरूप विविध दुःख भोगने पड़ते हैं।

पाप दिखने में बड़ के बीज की तरह सामान्य प्रतीत होता है। किन्तु बीज बढ़कर विशाल वट वृक्ष जैसा गम्भीर बनजाता है, वैसे अज्ञानी अपने किए हुए पापों के लिए अनन्त पश्चाताप करता है रुदन करता है शोक करता है, तथापि उसको किए हुए पापों का फल अवश्य भोगना पड़ता है।

कसाई जैसे जीव को भी कुएँ में पड़ने की सलाह नहीं दी जा सकती तो ज्ञानी पाप के अनन्त भयंकर कूप में स्वेच्छा से कैसे उतरे? पाप-प्रवृत्ति में प्रवृत्त न होना यह परोपकार नहीं किन्तु स्व-आत्मा पर परम उपकार है।

आश्रव--

यह विश्व पिशाची राज्य है। इसे चलानेवाला आश्रव नामक क्षुद्र राजा है, उसका नाश करनेसे ही आत्मा का शासन स्थापित हो सकता है। आश्रव ने तीनों लोक पर अपनी सत्ता चलाई है।

परमाधामी के मार से भी आश्रव का मार अधिक भयकर है, परन्तु अज्ञानी जीव आश्रव को अमृत मानकर उसका (आश्रवका) सेवन करता है।

आम्र की गुठली गाने वाला भिक्षमें आम्र वृक्ष का मालिक बनता है और गुठली सुजकर खा जाने वाला दरिद्री बनता है। इसी प्रकार इन्द्रियों का सवर करना-नियमन करना पुन्याई को बढ़ाना है और इन्द्रियों के विविध भोग भोगना अनत पूर्व पुन्याई का खाजाने जैसा है।

पांचों ही इन्द्रियों में रसनेन्द्रिय से अधिक सावधान रहना का है अन्य इन्द्रियाँ एक २ काय करती है और रसेन्द्रिय (जिह्वा) स्वाद लेने और बोलने का, दो काय करती है। कुत्ते की जीभ स्नेहियों के शरीर के घाव कमा देती है तब मनुष्य की आश्रवी जीभ स्नेहियों के हृदय में घाव कर देती है, पुराने घावको ताजे और छोटे घाव को बड़ा करती है। रसास्वाद भी द्रव्य और भाव से विशेष भयकर है। तलवार अपने स्वामी की रक्षा करती है, परन्तु जीभ रूप तलवार रसास्वाद से शरीर में अनेक रोग उत्पन्न करके अपनी घात करती है तथा वचन से स्नेहियों की घात करती है। अन्य इन्द्रियाँ प्रकट रहती हैं तब यह इन्द्रिय पद में मुँह के भीतर रहती है। रसनेन्द्रिय को वश करने वाला अपनी पांचों ही इन्द्रियों को वश करता है।

मिथ्यात्व का आश्रव चौथे गुणस्थान पर पूर्ण होता है।
अव्रत का आश्रव छट्ठे गुणस्थान पर पूर्ण होता है।
प्रमाद का आश्रव सातवे गुणस्थान पर पूर्ण होता है।
कषाय का आश्रव तेरहवें गुणस्थान पर पूर्ण होता है।
योग का आश्रव चौदहवें गुणस्थान पर पूर्ण होता है।

संवर—

मन वचन काया का संयम तथा किसी का लेश मात्र दिल न दुखाकर सब प्रवृत्ति जागृतिपूर्वक करना 'संवर' है। हलन चलन आदि की प्रवृत्ति शीघ्रता पूर्वक करने से आत्मोपयोग भूला जाता है। इससे असंयम होता है और संवर का नाश होता है। ज्ञानियों को उपयोगों की जागृति होने से आश्रव के स्थान संवर रूप होते हैं अज्ञानियों को उपयोग जागृति के अभाव में (अयतना से) संवर के स्थान आश्रव रूप होते हैं।

डॉक्टर—वर्षा के कहने से रोगी को वर्षों तक अपनी इन्द्रियों का संयम (संवर) रखना पड़ता है, तो अनंत जन्म मरण के दुखों से मुक्त होने के लिए कितने संयम की आवश्यकता हो? यह सहज समझा जा सकता है। इस भव में अपनी इन्द्रियों का संवर न करने वाले को नरक निगोद रूप अनन्त दुःखमय स्थिति में परवशता से अपनी वासना एवं तृष्णा को वश करना पड़ता है।

दूध दही, घृत, गुड़, शक्कर, मिश्री आदि पदार्थों का भी अच्छे से अच्छा उपयोग करने का लक्ष्य रक्खा जाता है तो अपनी इन्द्रियों और शरीर का अच्छे से अच्छा संवर मय उपयोग करना चाहिए और आश्रव की प्रवृत्ति से अपनी आत्म रक्षा करना चाहिए।

निर्जरा—

आत्मा तथा कर्म को पृथक करने की क्रिया सो निर्जरा। राग द्वेष के बलवान निमित्त प्रत्यक्ष उत्पन्न हों, किन्तु जिसका आत्म भाव किंचिन्मात्र राग द्वेष की प्रवृत्ति में लीन न हो सो निर्—

जन्म मरण दूर करने के लिये निजरा (तप) औषध समान है। संसार रूप काल ज्वर से पीड़ितों के लिये तप शीतल चन्दन समान है। तप करने से प्रत्येक समय कर्म का क्षय होता है और अन्त में कर्म रहित होते हैं।

बन्ध ––

मिथ्यात्व अव्रत, प्रमाद कषाय, और योग, ये पांच प्रकार के बंधन हैं। मन वचन काया आत्मा के यंत्र हैं। इन यंत्रों द्वारा कर्मों का बंध होता है। मन वचन काया की प्रवृत्ति में जहां २ कषाय मालूम हो उसे निकाल देना चाहिए। मन वचन काया की प्रवृत्ति में कर्म बंधन की वृद्धि होय तो इनकी प्राप्ति ही निरर्थक है।

आत्मा स्वयं आत्मा को बांधती है और छोड़ती है। जितना पुरुषार्थ कर्म बांधने के लिए किया जाता है उतना पुरुषार्थ कर्म तोड़ने के लिए किया जाय तो आत्मा शीघ्र कर्मों से मुक्त हो सके। कर्म बांधने का पुरुषार्थ असद् है और कर्म तोड़ने का पुरुषार्थ सत्पुरुषार्थ है।

घोड़े को गौड़ता रखने के लिए मालिक घोड़े के गले में और पैरों में घुंघरु बांधता है तथा मस्तक पर कलगी लगाता है। मुंह के पास चने और हरा घास रखता है और दौड़ाने के लिए रंगीन चाबुक रखता है। ऐसे प्रलोभनों से घोड़ा गाड़ी में बंधता है, वैसे ही संसारी जीव स्त्री पुत्र कुटुम्ब बाग बगीचे गाड़ी घोड़े मोटर तथा सोना चांदी हीरे मोती माणक के टुकड़ों के प्रलोभनों से इस भव में संसार रूप गाड़ी के बंधन में बंधकर चौरासी लाख जीवयोनि में अनंत काल तक भवभ्रमण करते हैं।

मोक्ष—

मानव भव मोक्ष द्वीप है परन्तु विषय कषाय युक्त प्रवृत्ति के कारण यह संसार द्वीप बन पाया है। माता के गर्भावास के बंधन में से मुक्त होने के लिए अकाम परिषह सहन करने पड़ते हैं तो अनंत जन्म मरण के बन्धनों में से मुक्त होने के लिए कितने तप और त्याग की आवश्यकता होना चाहिए? यह सहज ही समझ में आ सकता है।

करोड़ों बड़ के बीज कुचला कर नष्ट होते हैं उनमें से कोई एक बीज बड़ का स्वरूप धारण करता है, उसी प्रकार करोड़ों मनुष्य अपना जीवन पाप मय रीति से पूर्ण करते हैं और कोई भाग्यशाली जीव धर्म पथ मोक्ष पथ के सन्मुख होते हैं।

दूर्य पथ काटने के लिए रलवे, मोटर, स्टीमर एरोप्लेनादि शीघ्रगामी साधन काम में लिये जाते हैं, तो मोक्ष पंथ के लिए कितनी शीघ्रता अप्रमत्त दशा होनी चाहिए? यह सुज्ञ सरलता से समझ सकेंगे।

मोक्ष आत्मा का पात्र है। इस पात्र में रखने की वस्तु ज्ञान दर्शन है। स्थावर जीवायोनि मिट्टी आदि से मानव हुए तो मानव में से मोक्ष गामी होने के लिए मिट्टी से मानव होने जितनी प्रतिकूलता नहीं है, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है।

मनुष्य मात्र के लिए मोक्ष की हुंडी बंध लिफाफे में है। मात्र बंध कवर को खोल कर देखने की देर है।

पुण्य से स्वर्ग पाप से नर्क और वीतरागता से मोक्ष होता है। आत्मा में विषय कषाय का पर्दा दूर हो तो जीवका 'शीव' होवे। कषाय से बंध और अकषाय से मोक्ष है।

मोक्ष मधुर है, मोक्ष की साधना उससे विशेष मधुर है। मोक्ष अर्थात् आत्मविकाश की पूर्णता

आत्म स्वरूप से गिरना बंध है और आत्म स्वरूप में स्थिरता ही मोक्ष है। आत्मा (निज) के लिये आत्म (निज) बुद्धि ही मोक्ष है।

प्रश्न—मैं कब मुक्त होऊंगा?

उत्तर—जब 'मैं' नहीं रहूँगा।

२—मिथ्यात्व

वर्तमान कालीन बिना धार्मिक ज्ञान का शिक्षण मनुष्य को मात्र अपने शरीर सुख में लीन रखता है। नये २ आविष्कार द्वारा शरीर सुख के साधन बढ़ाकर मृत्यु का विचार मात्र भुलाया जाता है। मानव सम्यक् विचार नहीं कर सकते। सदा शरीर सुख के मिथ्या विचार (मिथ्यात्व) में लीन रहते हैं। आत्मा का ज्ञान हो वही सत्य शिक्षण और वही समकित है।

पंचम काल में मिथ्यात्व वृद्धि के साधन प्रति दिन बढ़ रहे हैं। विलास के साधनों में गृद्ध होकर मानव आत्म विकास के पथ को भूल जाता है।

मानव में से मिथ्यात्व के कारण प्रति दिन दान शील तप भावना, ज्ञान दर्शन चारित्रादि के भाव नष्ट हो रहे हैं और विपरीत भाव भर रहे हैं मिथ्यात्व के कारण इस भव से

अनाश परभव के विचार भी नहीं होते। वर्तमान युग सचमुच गाढ मिथ्यात्व का युग है। अब न्याय नीति के सूत्र भूले गये हैं 'साठा हमको प्रेम और निर्बल का मृत्यु इस युग में हैं। देवों को भी दुर्लभ मानव भव मिथ्यात्व के उदय से नारक जीव भी न चाहे ऐसा तिरस्कार पात्र बन रहा है।

वर्तमान में गैस और बिजली का प्रकाश बाह्य विश्व को प्रकाशित कर रहा है किन्तु अन्तर (चित्त) में मिथ्यात्व का घोर तिमिर बढ रहा है। सावधानी के अनेक कानून, कतलखाने और कचहरियां बनने पर भी माया अनीति अन्याय व्यभिचार, क्रूरता द्वेष ईर्षा, निंदा आदि मिथ्यात्व पोषक दुर्गुण मानव में बढ रहे हैं। वकील, बैरिस्टर सोलीसीटर्स और न्यायाधीश बढ़ते जाते हैं त्यों त्यों मिथ्यात्व जन्य उपरोक्त अपराध घटने के बजाय बढ़ते जाते हैं। विलास वर्धक यंत्र और साधन बढ़ रहे हैं त्यों त्यों भूख मरा बढ रहा है और इसी कारण पाप प्रवृत्ति बढ़रही है। मिथ्यात्व वर्धक साधन एक दम बढ रहे हैं। पूर्व कालमें तीर भाला थे। आज एक बोतल विषैला गैस क्षण मात्र में लाखों मानवों के प्राण लेता है। रेलव, मोटर, स्टीमर हवाई जहाज आदि पाप वर्धक साधन (मिथ्यात्व) बढ रहे हैं। शरीर पर वस्त्र भूषा आदि की बाहरी सभ्यता बढ रही है और अन्तरात्मा में लोभ तृप्ति, पामरता, स्वार्थ, शठता, और अशांति के नित्य नये रोग लिपट रहे हैं आत्म भावना भूलाने वाला मिथ्यात्व का महा रोग वर्तमान में बढ रहा है। ऐसे महारोग में से बचने के लिए सम्यक् दृष्टि निरंतर यत्न करता है। मिथ्यात्व की जड क्रोध मान माया लोभ और राग द्वेष पर लगती है। और सम्यक्त्व की जड क्षमा विनय सरलता संतोष एवं समभाव पर लगती है।

मिथ्यात्वी नित्य विलास के साधन और अपनी आवश्यकता बढ़ाये जाता है और समदृष्टि अपनी आवश्यकताएँ शरीर के रोगवत् घटाते जाते हैं क्रमशः अपना जीवन सादगी से चलाकर अपने सम्यक्त्वरत्न की रक्षा करते हैं।

३—अविरति

आत्म स्वरूप में विशेष रति पाना रत होना सो विरति और उस वृत्ति से उदासीनता का नाम अविरति। जब तक आत्मा की प्रतीति न हो वहां तक विरतिपना हो नहीं सकता। आत्मा अमर है, आनन्द का भण्डार है, ऐसा अनुभव जहां तक इन्द्रियों के विषय भोग प्रति उदासीनता होने नहीं पाती। आत्मानुभव हुए बिना व्रत प्रत्याख्यान की इमारत टिक नहीं सकती। जितने प्रमाण में आत्मानुभव की दृढ़ता होती है उतने प्रमाण में व्रत प्रत्याख्यान में दृढ़ता रह सकती है।

आत्मा में मिथ्यात्व का अंश होगा जब तक महान उपदेशों की भी असर नहीं होती। रेती की नींव पर मकान ठहर नहीं सकता, वैसे ही मिथ्यात्व के नाश बिना व्रत प्रत्याख्यान टिक नहीं सकते। मिथ्यात्व भाव दूर किये बिना बोध देना लोह के साथ लक्कड़ चिपकाना है अथवा रेत के लड्डू बांधना है।

बिना आत्मानुभव के व्रत प्रत्याख्यान कुलमर्यादा अथवा लोक रूढ़ी से पाले जाते हैं। व्रत प्रत्याख्यान शरीर का धर्म नहीं है परन्तु आत्मा की आंतर स्थिति बताने वाले हैं। वेष, भाषा, ज्ञान और विद्वता सच्चे त्याग के लक्षण नहीं है। आंतर वासना

का नाश हुए बिना कोई मत या अवस्था बाह्य रूपेण धारण की जाय, वह दबी हुई अग्निवत् उपशांत मात्र है, निमित्त पाकर उसका पुनः उदय होता है।

व्रत प्रत्याख्यान [redacted] असर जीवन की समस्त प्रवृतियों में हो, वही त्याग व्यवहार सत्य है। यदि व्रत प्रत्याख्यान की असर जीवन पर न हो तो वे व्रतादि प्रायः सत्य नहीं हो सकते। त्याग के अभाव में मानव मानवता का त्याग कर पाशवता प्रकटाता है। ज्यों ज्यों त्याग की मात्रा बढ़ती है त्यों त्यों पाशवता का नाश होकर मानवता प्रकटती है।

पशुत्व, मनुष्यत्व देवत्व, ईशत्व आदि में जातिगत फर्क नहीं है परन्तु उपरोक्त भिन्नता त्याग व विकाश पर ही है।

भोग भोगने के लिए मानव भव योग्य नहीं है, चूंकि मनुष्य में सारा सार विचारने की शक्ति है। अतः निःशंक होकर भोग नहीं भोग सकता। भोग रसिक मनुष्यों को स्वतंत्र (स्वछन्द) और निःशंक भोग भोगने के लिए पशु योनि में पुनः जाना पड़ता है। वहीं उनकी लालसा पूर्ण होती है। तिर्यंच योनि में रात्रि दिन, एकान्त अनेकान्त, इष्ट-अनिष्ट और माता बहिन पुत्री पिता पुत्र या भाई का भेद जाने बिना निःशंक हो भोग भोग कर मानव भव में रही हुई अपूर्ण विषय वासना को पूर्ण करते हैं।

विषय वासना का सकल्प बल (प्रबल इच्छा) द्वारा जीव उचित दिशा में, उचित जीवायोनि में जन्म धारण करके विषय वासना का संकल्प पूर्ण किया जाता है।

त्याग के अभाव में मनुष्य को अधम वासनाओं की प्रबल इच्छा होती है और भोगोपभोग के लिए तरसते रहते हैं।

भोग की वासना पूर्ण करनके लिए मृत्यु के बाद पूर्ण पशुता (पशु योनि) प्राप्त करना है।

त्याग प्रत्याख्यान के बिना का भोगी मानव स्वार्थांध होता है वह कुटुम्ब समाज या देश का कल्याण कर नहीं सकता। कुटुम्ब की प्रति पालना के लिए भी तप और त्याग की आवश्यकता होती है। मात पिता सन्तान के लिए अनेक कष्ट उठाते हैं, अपना सर्वस्व देकर सन्तान की सेवा करते हैं तो वे अच्छे माँ बाप माने जाते हैं। आदर्श नागरिक कहलाने के लिए भी संयम की परमा वश्यकता है। विश्व की दृष्टि में भी बिना संयम के अच्छा नागरिक अच्छे मात पिता कुटुम्बी या आदर्श त्यागी साधु समझा नहीं जाता। वर्तमान में प्रजा विलासी व मौज शोक में मानने वाले माँ बाप को मां बाप या राजा को राजा मानने भी तैयार नहीं है। जितने प्रमाण में संयम की मात्रा अधिक होगी उतना ही अच्छा गृहस्थ या आदर्श त्यागी कहलायगा। अच्छे होने के लिये साधु या संसारी हर एक को अपनी स्थित्यनुसार त्याग और प्रत्याख्यान की आवश्यकता है। संयम वृत्तिवाला सुन्दर गृहस्थाश्रम चला सकता है, चाहे वह राजा हो या रंक, सभी को संयम वृत्ति का शरण लेना पड़ता है। संयमी जीवन के अभाव में साधु जैसे अपने पद से च्युत होता है वैसे गृहस्थ भी अपने पद से पतीत होकर गृहस्थाश्रम के, राज्याधिकार के और माँ बाप के पवित्र कर्तव्य से च्युत होते हैं। योग्य माँ बाप होने के लिये पशु पक्षी भी अपने सन्तान की प्रति पालना स्वयं भूख ■ स सहकर भी करते हैं।

त्याग ही इस लोक एवं परलोक में परम सुख का स्थान है।

४–प्रमाद।

आत्मा की आभ्यंतर अवस्था स्वाभाविक शुद्ध उपयोगमय है, इससे विपरीत स्वानुभव से चलित स्थिति को प्रमाद कहा है। लश्कर में प्रमाद करने वाले घोड़े या सिपाही को बन्दूक से उड़ा दिया जाता है। तो आत्म धर्म में प्रमाद करने वालों की क्या दशा हो? पारसमणी का जोग के साथ समागम करने में क्षण मात्र का प्रमाद क्रोड़ों का नुकसान करता है तो आत्म धर्म रूप पारसमणी के समागम में प्रमाद होने से कितना नुकसान हो?

धर्म कार्य आज नहीं करेंगे कल करेंगे वाला प्रमादी आत्म धर्म को सदा के लिये खो देता है और कल के बदले में आज करने से आत्म धर्म की अनन्त काल के लिये रक्षा होती है।

प्रमाद दशा में कर्तव्याकर्तव्य का भान होने पर भी प्रमाद के नशे में अकर्तव्य सेवन होता है। मानव प्रगति में प्रमाद जैसा अहित कर शत्रु अन्य कोई नहीं है। मनुष्य से प्रमाद दूर हो तो परमात्मत्व प्रकट हो जाय। प्रमाद का नशा इरादा पूर्वक कर्तव्याकर्तव्य का भान भुला देता है। प्रमाद ही वर्तमान संयोगों में सन्तुष्ट रह कर आगे बढ़ने में बाधक है। प्रमाद ही प्रगति पथ में अनेक बाधक सलाह देता है।

जीव का अधिक पतन करने के लिये प्रमाद अपने अनेक मित्रों के साथ आता है और महान् पतन करता है। चार विकथा (स्त्री, खान पान, देश, और राज सम्बन्धी गप्पें), चार कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ), पांच (इन्द्रियों के) विषय (स्पर्श, रस, गंध रूप, शब्द), निद्रा, स्नेहादि प्रमाद के अनेक मित्र हैं।

विश्व में कोई तत्व (पदार्थ) स्थिर नहीं है। समस्त तत्व पूर्वा वस्था से गतिमान हो रहे हैं। इस परिस्थिति में आत्मा यदि अपनी प्रगति न करे तो उसका पतन होकर अपने मूल स्थान नरक निगोद में जाता है। प्रमाद पतन की ओर वेग से ले जाता है। प्रमाद दशा में नरक निगोद की वासना मधुर मानी जाती है। प्रमाद के कारण पिशाचिनी भी अप्सरा मानी जाती है।

आरोग्य घटने का अर्थ रोग का बढ़ना है, वैसे स्वर्ग या मोक्ष के अभाव में नरक निगोद की ओर पदार्पण होते हैं।

प्रमाद और मदिरा में कोई फर्क नहीं है। प्रमाद की असर धीरे २ अप्रकट और गुप्त रीत्या होती रहने से मनुष्य की समझ में नहीं आता, परन्तु मदिरा का परिणाम प्रत्यक्ष होने से लोग उससे सावधान रहते हैं। शराब के नशे के लिये सावधानी का समय निकट आता है, जब प्रमाद करने वाला सावधानी के समय का अनादर करता है।



४–ज्ञान व समकित

ज्ञान—चन्द्र सूर्य तथा तारे लाखों मील ऊंचे दूर होने पर भी इतना प्रकाश देते हैं, तो ज्ञान का प्रकाश कितना अधिक हो यह सहज समझमें आ सकता है। चन्द्र सूर्यके प्रकाश को सामान्य बादल तथा धूओं भी दबा सकती है, परन्तु आत्म ज्ञान का प्रकाश दबाने कोई भी समर्थ नहीं है। ज्ञान दशा के अभाव में स्थावर विकलेन्द्रिय और अज्ञानी जीव जैसी दयापात्र दशा सहीको भी हो जाती है।

जिसके पास पारसमणी है वह मेरु जितने सोने के पहाड को भी पत्थर तुल्य मानता है, वैसे ही ज्ञान होने पर देव व मानव के उत्कृष्ट भोग भी रोग तुल्य समझे जाते हैं। जो ज्ञानी होता है वह आत्मा में रमण करता है। बिना ज्ञानका मानव चमडे का मनुष्य जैसा अज्ञ माना जाता है।

रसायण शास्त्री विविध प्रयोग न करे तो उसका ज्ञान निरर्थक है, वैसे ज्ञानवत् आचार न हो तो ज्ञान की कीमत ही क्या! रस्ते के पुल नीचे होकर क्रोडों मण पानी बह जाता है। किन्तु पुल को बिन्दू मात्र स्पर्शता नहीं है, वैसे ही बिना आचार का ज्ञान लाभदायी नहीं है।

सूर्य के प्रकाश के अभाव में वनस्पति के पौधे मुरझा जाते हैं, वैसे ज्ञान के प्रकाश के अभाव में आत्मगुण के पौधे नष्ट होते हैं ज्ञान के प्रकाश द्वारा आत्मगुण प्रति समय अधिकाधिक बढ़ता जाता है।

ज्ञान अग्नि तुल्य है। जैसे अग्नि अपथ्य को पथ्य और अपक्व को पक्व बनाती है, वैसे ज्ञान प्रतिकूल संयोगों को अनुकूल और विषम भाव को समभाव बनाता है।

शरीर बल की अपेक्षा इंद्रिय बल में और इंद्रिय बल में ज्ञान बल में अधिक सामर्थ्य और आनन्द है। इसीलिये सत्यज्ञानी ज्ञान को आचार (चरित्र) में रखने तथा मात्र का प्रमाद नहीं करता, जैसे तृषातुर जल प्राप्ति में। दावानल देख कर वहां से दूर न जाने वाले, पंगु जैसे जल कर भस्म हो जाता है, वैसे ज्ञान मुनत वर्ताव (चरित्र) न करने वाला ज्ञानी ज्ञान पर भी सद्गति का अधिकारी नहीं हो सकता। अंध का दौड़ना जैसे निर्धारित स्थान पर पहुँचने में असफल होता है उसी प्रकार ज्ञान बिना की क्रिया भी असफल रहती है। ज्ञान और क्रिया मोक्ष गति रूप रथ के दो पहिये तुल्य है।

समकित—चौथा गुण स्थान (सम्यक्त्व) अर्थात् अंतरात्म भाव आत्म मन्दिर का गर्भ द्वार है। जिसमें प्रवेश करके उस मन्दिर में वर्तमान परमात्मा भाव रूप निश्चय देव (निजात्मा) के दर्शन किये जा सकते हैं, जैसे कैदी कैद खाने से छुटने की नित्य चिंता करता है और अपने साथी कैदियों से सदा उदासीन रहता है वैसे समदृष्टि आत्मा अपने आप को संसार का कैदी समझ कर संसार से मुक्त होने की भावना से भोग परिवार में अनासक्त बना रहे। फांसी पर लटकने तैयार व्यक्ति की अनासक्त मनोदशा समान्वित समदृष्टि की होती है। दुष्ट रोगी रोग मुक्त होने में जितना प्रयत्न शील होता है समदृष्टि जीव कर्म क्षय होने पर्यन्त इससे भी अधिक प्रयत्न शील रहता है, आराम की नींद नहीं सोता।

समदृष्टि को अपनी देह पर भी ममत्व नहीं होता तो अन्य किस पर ममत्व हो सकता है? राग द्वेष के प्रबल साधनों में भी समदृष्टि अडोल रहे। समदृष्टि की व्यवहार प्रवृत्ति में भी अलौकि

रूप हो। दह धर्म की तरह आत्मधर्म प्रत्यक्ष और अनिवार्य प्रतीत हो तब समकित प्राप्त हुआ मानना चाहिए। राग द्वेष एवं मोह का नाश न हो वहाँ तक समदृष्टि को चैन नहीं होता। समदृष्टि को वीतराग सुख व अलावा शेष सब दुःख प्रतीत होता है। समदृष्टि देह मय नहीं किन्तु आत्म भाव मय होता है। देह मय दशा है सो मिथ्यात्व दशा है।

६—पंच महाव्रत

१ अहिंसा—

अहिंसा की आस पास १०० कोसों में समभाव फैलता है। अहिंसक के पास क्रूर प्राणी भी दयालु बनता है तो सौम्य शक्ति वाला मानव वैर वृत्ति को भूले जिसमें आश्चर्य ही क्या ?

जितने अंश में समदर्शिता हो उतने ही अंश में अहिंसा और विषम भाव में हिंसा है। अहिंसक समदर्शी पत्थर का उत्तर गुलाब से देता है। विषय कषाय का विजय ही अहिंसा व तप है। अहिंसक, अहित करने वाले का भी हित करने का प्रयत्न करता है। हिंसक अपनी वृत्ति नहीं छोड़ता तो अहिंसक जीव अपनी अहिंसा वृत्ति क्यों छोड़े ? मानव पूर्ण रूप से अहिंसक, पूर्ण क्षमावान न हो वहाँ तक वह पूर्ण मानव नहीं है और जितनी अपूर्णता है उतनी पशुता है। तन्तु की डोर से भी अहिंसा की डोर अति सूक्ष्म है। हिंसा पिशाच वृत्ति है। और अहिंसा परमात्म वृत्ति है। समभाव से कष्ट सहना अहिंसा का राज पथ है। कुविचार, दोष दृष्टि, अविचार से उत्तर देना, हिंसा है। किसी पर

सत्ता स्थापन करके आज्ञा में चलाना भी हिंसा है पर लघुता व स्वप्रशंसा भी हिंसा है। निज मान को छोड़ कर भी शत्रु का मान बढ़ाने में अहिंसा धर्म की रक्षा है। अहिंसा धर्म की रक्षा के लिये अखण्ड जागृति रखनी चाहिए। अहिंसक को शत्रु नहीं होते "शठ प्रति शाठ्य नहीं, परन्तु सत्य 'कुयात्' अहिंसा अर्थात् विश्वव्यापी प्रेम, पुत्र पुत्री के अपराध बिना शर्त के माफ किये जाते हैं वैसे अहिंसक पुरुष विश्व को अपना मानकर सब के अपराधों को उदार भाव से क्षमा दवे। अहिंसा के पालन में अत्यन्त धैर्य और शौर्य की आवश्यकता है। अहिंसा समझ में आवे तो उभय लोक में यह चिन्तामणि रत्न तुल्य सुख देता है।

किसान खेती के विकाश के लिये, वर्षा के पानी के प्रहार को सहर्ष झेलता है। वैसे अहिंसक अपनी खेती (अहिंसा) की प्रगति के लिये समस्त प्रकार के प्रहारों को सहर्ष झेले। कष्ट भोगने वाले की अपेक्षा कष्ट देने वाले को अधिक कष्ट सहना पड़ता है। अहिंसा व्रत का आराधक किसी किसी निमित्त से लघुता नहीं करे। जीवन के भोग से माता अपनी सन्तान की रक्षा करती है, वैसे अहिंसक विश्व माता बनकर अपने जीवन भोग से विश्व की रक्षा करे। अहन्ता का सर्वथा नाश ही अहिंसा है। शत्रु को भी सुखी देखने की भावना ही सत्य अहिंसा है। वैरियों को वश करने का सर्वोत्तम शस्त्र अहिंसा ही है।

सत्य—

हजारों सूर्यों के प्रकाश से सत्य का प्रकाश विशेष है। और लाखों राहुओं से अधिक अन्धकार असत्य का है। सब सद्गुणों का सत्य में और सब दोषों का असत्य में अन्तर्भाव होता है। जिसमें अहङ्कार का आत्यन्तिक नाश हुआ हो, वही सत्य मूर्ति

हो सकता है। सत्याचारी-सदाचारी सदा नम्र होता है। वह अपनी त्रुटियाँ प्रतिदिन समझता जाता है। विचार वाणी और वर्तन में सत्य होना चाहिए। सत्य समुद्र समान है। उसमें समस्त गुण रूपी नदियाँ आमिलती हैं। प्रत्येक श्वाच्छोछ्वास में सत्य का समावेश रहना चाहिए। जहाँ सत्य का वास है वहीं परम आनन्द है।

निज प्रशंसा से प्रसन्न होना भी मृषावाद है। परभाव वाली भाषा बोलना निश्चय से असत्य है। स्वस्वरूप में स्थिर होना निश्चय सत्य है। आत्मा को स्वभाव से चलित करना निश्चय असत्य है। अपने गुणों को प्रकाशित करना मृषावाद है। सत्य के व्यय बिना मानव का जीवन पशु तुल्य है।

अचौर्य—

अस्तेय व्रत पालन करने वाले को बहुत नम्र विचारशील बन कर अति सावधानी से रहना चाहिये। जैसे रोगी अपना रोग घटाने को तहदिल से यत्न करता है, इसी प्रकार अस्तेय व्रत का आराधक अपनी आवश्यकताओं को घटाने में प्रयत्नशील रहे। जरूरत से ज्यादा अन्न, वस्त्र, मकान, धन या अन्य वस्तुओं का संग्रह रखना चोरी है। विषय कषाय का सेवन निश्चय से चोरी है। स्त्री पुरुष के अङ्गोपांग विकार दृष्टि से देखना भी चोरी है। चोर जबरदस्ती से धन लूट जाते हैं जिसको लोग बुरा समझते हैं। आश्चर्य है कि अज्ञानी आत्मा आत्मिक धन लुटाने के लिये विषय कषाय चोरों को निमन्त्रण देते हैं।

ब्रह्मचर्य—

आत्मा के शुद्ध स्वरूप में विचरने को ब्रह्मचर्य कहते हैं। अर्थात् जीवन स्पर्शी पूर्ण संयम पूर्ण आश्रव निरोध वह ब्रह्मचर्य है।

आत्म स्वरूप के विचार के अलावा सब व्यभिचार है। पाँच इन्द्रियों के २३ प्रकार के विषयों में आसक्ति भी व्यभिचार है और इन्द्रियों के विषयों का संयम, यह शील है। "समभाव सो शील और विषम भाव सो व्यभिचार"।

ब्रह्मचर्य का अर्थ मात्र शारीरिक पवित्रता रखना ही करना चाहिये लिए रुपये का बदलना है। सदाचारी मनुष्य अपनी स्त्री के साथ भी भोग दृष्टि नहीं रखता। मनुष्य के गुलाम बनो पर विषयी मन के गुलाम मत बनो" निःसंशय मानव की सब से विशेष मूल्यवान संपत्ति ब्रह्मचर्य है। जैसे फूटा लेम्प हो तो तेल नीचे से चुल जाता है अन्यथा ऊँचा चढ़ कर प्रकाश देता है, वैसे ही ब्रह्मचर्य के अभाव में आत्मतत्व आत्म प्रकाश का नाश होता है, और उसके पालन से आत्म तेज तथा आत्मशक्ति की वृद्धि होती है।

व्यभिचारी पुरुष को पशु कहना पशु का अपमान करना है क्योंकि पशु प्रकृति के अनुकूल संयम रखता है। इतनी संयम वृत्ति मनुष्य नहीं रखता है।

एक बतन में जाहू मांस, हड्डियाँ, चमड़ा, वीर्य मलमूत्र पीप आदि भरे हुए हैं, उस पर थूकने में भी अरुचि होती है। इन्हीं पदार्थों का समूह रूप स्त्री पुरुष के शरीरों की रचना है। उस पर ज्ञानी समझदार विषय जन्य राग दृष्टि कैसे रख सके!

परिग्रह—

मोह राजा कहता है, कि मैंने अपनी समस्त शक्तियाँ परिग्रह के पीछे खर्च की हैं, परिग्रह के पीछे मेरा समस्त सैन्य है।

परिग्रह बन्धन के लिये मेरे समस्त सैनिक लोभी को प्रेरणा करते हैं और यह लोभी कुत्तोल की तरह धन के लिये चारों दिशा में भटकता फिरता है।

यदि च लहसुन की खेती में कपूर केशर और कस्तूरी का ■ ˜ डाला जाए और सुवर्ण की झारी से दूध सिंचन किया जाय तो भी वह अपना स्वभाव नहीं छोड़ेगा। वही दुर्गन्ध मय कांद व लहसुन होवेगा इसी प्रकार अनीति से प्राप्त धन का कोई विचार शील पुरुष भी शायद ही सदुपयोग कर सके।

श्रीमन्त होने में या श्रीमन्त पुत्र होने में हर्ष मानते हो परन्तु वह धन कितने पाप से एकत्र हुआ है, उसका विचार करते हो? दुनियां में धन के कंकर चुगते चुगते आत्म गुण के हीरे गंवाओगे क्या? धन का नशा मदिरा से भी अधिक भयंकर है इस भयंकर नशे वाला (धनवान) क्वचित् ही धर्म के सन्मुख रह सकता है। परिग्रह से ज्ञान के स्थान में अज्ञान की, धर्म के स्थान में अधर्म की और मोक्ष के स्थान बन्ध की प्राप्ति होती है। बुद्धिमान् पुरुष को धन का मालिक नहीं परन्तु धन का ट्रस्टी मात्र मानता है। और अपनी समस्त सम्पत्ति का निरहित के लिए अच्छे से अच्छा उपयोग करता है। पैसा मनुष्यों के बीच भेद भाव के विचार खड़े करता है। विषय विलास में व्यय होने वाला धन किसी जुल्मी राजा ने दृढ रूप गले में बांधी हुई सुरंगा की शिला तुल्य है। पैसा मनुष्य प्रेम का व मानव धर्म का नाश कराता है। धन का उपयोग निराश के मार्ग में होना चाहिये। जिससे आत्म धर्म का विनाश न हो। इस लिये नित्य सावधानी रक्खूँ।

७—मौन ।

मौन धारण करके जो अपने जीवन को कछुए की तरह गुप्त बना लेता है, वही सच्चा साधक है वह विश्व के लिये महाउप कारक है। इस प्रकार जीवन को नाप कर मौन धारण करने वाला सत्य संचालक जीवन मुक्त सर्वथा अहंभाव रहित सम्पूर्ण शुद्ध व्यक्तित्वशाली महत्वाकांक्षा रहित हो वही विश्व का हित कर सकता है।

आत्मिक योग्यता बिना शब्दोच्चार किये हुये प्रकाशित होती है। बोलने की अपेक्षा मौन विशेष प्रभावशाली है। वचन की शक्ति मर्यादित है और मौन की शक्ति असमर्यादित है। मौनी स्वाधीन है, और बोलने वाला पराधीन है। मौन कार्यकर्ता सब से बड़ा सफल सेवक है। प्रत्येक कार्य मौन से विशेष प्रकाशित और प्रभावित होता है जो नम्र है वह गुपचुप अपना काम करके भी मौन रहता है, और अभिमानी अपने थोड़े काम पर बड़ा बिगुल फूंकता है।

मौन का धारण पथ पर लेजाने वाला पथ प्रदर्शक है। पाँच इन्द्रियाँ मन और चार कषाय, इन दश का संयम पूर्वक मौन धर्म का पालन करें।

मौन मन का अङ्गीकार करने वाला सब क्लेशों से दूर रह कर परम शान्तिमय जीवन बिताता है।

समथ नहीं है। समाज और सरकार के नियम तोड़ कर मनुष्य भग सकता हैं छिप सकता है, किन्तु कर्मों के नियमों को तोड़ कर वह कहीं नहीं जा सकता है। उसे अपने किए कर्मों का फल भुगतना ही पड़ता है। अच्छे कम करने के लिये कर्म के नियम बाध्य नहीं करते, इच्छानुसार कर्म करो। सुख के बीज बोओ या दुःख के कम तो कुदरत के नियमानुसार बोये हुये बीज की तरह फल देते रहगे। कम किसी पर दया या मेहरबानी नहीं करते। उसे सिर्फ न्याय और सत्य प्रिय है जिससे किसी की आजीजी या प्रार्थना नहीं सुन कर अपने अचलित नियमानुसार तीन लोक में अपना शासन चलाते हैं।

राग द्वेष का परिणाम सो भाव कर्म और पुद्गलों का आत्मा के साथ मिलना सो द्रव्य कम है। प्रथम भाव कर्म और उसके परिणाम रूप द्रव्य कर्म है। कर्म परिणाम राजा के समान है। उसकी आज्ञा से जीव चौरासी लाख जीवयोनि में भटकते हैं। कर्म मदोन्मत्त राजा है, वह किसी की प्रार्थना नहीं सुनता। कर्म अपने अटल नियमानुसार किया करता है। कर्म प्रार्थना नम्रता क्षमा आदि किसी तत्व को महत्ता नहीं देता वह अपना कार्य करने में मस्त हैं। कम राजा दुखियों के दुःख को सुनने में बहिरा और देखने में अन्धवत् रहता है। कर्म राजा जगत के जीवों को तृण तुल्य मानता है, उसमें दया नहीं है, पर न्याय है। न्याय के बिना वह एक पैर भी नहीं रखता, वह निष्पक्ष न्याय करता है। कर्म की आज्ञा का पालन सब को अप्रमत्त होकर करना पड़ता है। इसके लिये अपील का स्थान नहीं है, यही उसकी अन्तिम कचहरी है। उसमे दिये हुए फैसले को भी किन्हीं संयोगों में कभी भी नहीं बदल सकते। कर्म की कचहरी में रिश्वत या सिफारिश नहीं चलती, सत्तायाप्रता शिक्षा भोगने योग्य है या अयोग्य, उसे

है या नहीं, सह सकेगा या नहीं, उसका लेश मात्र विचार
किये बिना सजा परखा देता है। कम राजा मानता है कि जिसमें
जीवन की शक्ति थी, उसमें भोगने की शक्ति होनी ही चाहिये।
भी हुए रकम ब्याज सहित चुकाना ही चाहिये।

इस का राज्य विशाल है विविध स्थान में विविध रूप में
बदली करता है। कम विविध प्रकार के रूप धारण करा
जीवों को सुखी तथा दुःखी बनाते हैं। विविध जीवयोनियों
में रूप धारण कराये जाते हैं। यह विश्व कम की आज्ञा द्वारा
की नचाने की रंग भूमि है। मोक्ष सिवाय अखिल संसार में
कम का ही राज्य है।

जहाँ और समय प्रकाश को पृथक् नहीं कर सकते, वैसे ही
और उसके परिणाम को पृथक् नहीं किया जा सकता। कर्म
न में है और उसका परिणाम भविष्य में है। वर्तमान भूत
भविष्य एक ही काल के तीन अभिन्न टुकड़े हैं, वैसे ही कर्म
तक कारण कर्म और कर्म का परिणाम एक ही प्रवृत्ति के
हैं।

जैसे गाड़ी में इच्छानुसार फर्स्ट क्लास के दर्जे पर
(First, Second Third & Inter) में मनुष्य बैठता है वैसे ही
मनुष्य और तिर्यंच गति की इच्छानुसार टिकट भी जाय नहीं
नहीं पहुँच सकते हैं, कोई बलात्कार नहीं करता। स्वेच्छा
यहाँ ज्ञान भी सामान्यतः एकत्र की जाती है और वहाँ जाया
है। प्रतिक्षण उस गति की ओर गमन हो रहा है, परंतु
यह जीवात्मा का अपनी गमन क्रिया का भान रहना नहीं है।
मरजीक दिखने उसको अन्य गति में ले जाने में कोई कम समर्थ
है। ' — कृत नहीं मिलता' इस न्याय से इस चाहने

हैं, वैसी ही गति मिलती है। अज्ञान के योग से मोगन का (चाह
का) जीव को लेश मात्र भी भान नहीं है। आत्मा की मर्जी वि
रुद्ध एक भी प्रवृत्ति कराने में कर्म सर्वथा असमर्थ हैं।

मनुष्य जिसके लिए योग्य न हो वैसे सुख या दुःख उसे मि
नहीं सकते उसको योग्यतानुसार ही सुख या दुःख मिलते हैं
शूली या फांसी पर चढ़ने वाला तोप के सामने खड़ा रहने वाला
शमशेर से कटने वाला, अग्नि में व पानी में मरने वाला अपन
कृति का फल पाता है। उसका बोये हुए बीजका फल मिलरहा है

स्वयं किये कर्म भूल जाय या कुदरत के घर में अन्धेर सम
कर चाहे जैसी प्रवृत्ति करे परन्तु कर्म (कुदरत) की बहियों में का
मात्रा का भी फरक नहीं पड़ता। और स्वयं अपने किये कर्मों
ही अन्ध, बधिर, लूला, गूंगा, कोढ़िये आदि बन हैं। और गये
गए हैं, इनको सुख के सिवाय अन्य कोई नहीं बनाता। अपने
योग्य कर्म न हो तो इन्द्र भी बाल बांका करने में समर्थ नहीं है

कर्म का उदय होना कर्म की पक्व दशा है और वह
सामग्री में से विकृति रूप फल उपजाते हैं। बोया हुआ उगा
नया कुछ नहीं बना है, न बनने वाला है। होना था सो हुआ
नया कुछ नहीं हुआ है। कर्म कठोर दंड देने वाला कोई देव न
है, कुदरत की कानून मात्र है। अच्छे काम का बदला इनाम
बुरे काम का दण्ड हम स्वयं मांग लेते हैं। अच्छे कार्य स्वयं सुख
नुभव कराते हैं और बुरे कार्य दुःखानुभव।

हमारे इनाम व शिक्षाओं के उत्पादक हम खुद ही हैं। आत्म
अपनी वासना को तृप्त करने के लिये तरस रहा है। और ज
तक योग्य स्थान में आकर क्षुधा तृप्त न हो वहाँ तक क्षुधा अथ

वासना निवृत्त नहीं होती। स्त्री पुत्र और धन की उपाधि किसी शतान ने गले में फांदी नहीं है किन्तु जीवात्मा प्रेम पूर्वक ग्रहण करता है। वैसे ही अनिष्ट की गति भी प्रेम पूर्वक स्वीकार की जाती है और सहर्ष इसमें बदला भी दिया जाता है। अपनी इच्छा विरुद्ध एक अंगुल भी आगे बढाने में समर्थ नहीं है। दुर्गति भी जबरदस्ती से खेंच नहीं जाती है। जीवात्मा स्वयं दुर्गति में लिए जाने वाले कार्यों की तथा साधनों की खुशामद करता है। और उसके योग्य सामग्री एकत्र करता है। तब उसको उस गति में ले जाया जाता है। जीवात्मा की अपनी दीनता, प्रार्थना और बहुत काल की भावना के फलितार्थ दुर्गति का समागम होता है। वैसे ही दुर्गति का भी। अग्नि पर अंगुली रखी जिस से जल-छाला हुआ और पीड़ा भोगी इस में अग्नि का दोष नहीं है। इसी प्रकार जैसे कर्म किये वैसे ही फल मिले। दोष जीव का है न कि कर्म का। स्वयं शिक्षा पाता है। छाला अग्नि में हाथ न रखने के लिए सावधान करता है वैसे कर्म भी प्रति समय सावधान बनाते हैं। ये आकाश लैम्प(Search Light) की तरह उपकारक है।

कर्म दया करके विषयी को रोगी बनाते हैं। अन्यथा अधिक पाप करके पापी दुर्गति में जायें, पतंगियों के पास से दीपक उठा लेना उसपर उपकार करना है इसी प्रकार विषयी को रोगी बना कर विषयों के अनिष्ट का भान कराने में उपकारक है। लज्जा शील चोर घड़ी से शर्माता है विश्व के समस्त प्रपंच (बनाव) कर्म का साक्षात्कार बताते हैं। शरीर का मल भी दुखदायी है तो आत्मा का कर्म मैल कितना दुखदायी हो सकता है?

शरीर रूप बर्तन में डाला हुआ (खाया हुआ) अन्न वात, पित्त, ...स, लोहू पीप और मल मूत्र आदि सप्त

बनता है। वैसे एक समय में बंधे हुए कर्म सात प्रकार में बट जाते हैं। जीव रूप भार वाहक कर्म रूप भार भर कर चौरासी लाख जीवयोनि में अनन्त काल से परिभ्रमण करते हैं।

जितने कर्म अधिक उतनी काया सकुचित, निगोदवत्। ज्यों कर्म कम होते जाते हैं, त्यों काया की संकुचितता दूर होती जाती है। जैसे—प्रत्येक स्थावर बेइंद्रिय तेइंद्रिय चौरेन्द्रिय पंचेन्द्रिय आदि। निर्बल आत्मा कर्म से पराजय पाते हैं और सबल आत्मा कर्म को पराजित करते हैं।

उदयमान कर्म निमित्त मिलाते हैं, परन्तु वश करने के लिये आत्मा को प्रेरणा नहीं करते। यदि प्रेरणा करे तो आत्मा के पास आत्म सामर्थ्य ही न गिना जाय। निमित्त की सत्ता के आधीन होने वाले का पतन होता है। निमित्त के आधीन सबल आत्मा निमित्तों को फेंक देते हैं। और निर्बल आत्मा उसके आधीन होते हैं। एक समय का सफल कर्मों का विजय अनन्त समय का विजय है। और एक समय की हार लम्बी हार है। बड़ के बीज का बड़ वृक्ष होने के बाद विजय दुष्कर है। वर्तमान में तो मात्र बड़ के बीज का विजय करना है बीज जैसे छोटे कर्मों से हारने वाले को पुनः बड़ के साथ युद्ध के लिए तैयार होना पड़ेगा। कर्मों के निमित्तों से ज्ञानी नहीं ललचाता, मात्र अज्ञानी ललचाता है। ज्ञानी कर्म योग से तृण की तरह उड़ा करता है और ज्ञानी हमेशा स्थिर रहते हैं।

आश्चर्य की बात है, कि भूतकाल के कर्म वर्तमान में भोग जाते हैं फिर भी नये कर्म बांधने में प्रमाद नहीं किया जाता। कर्म के नियमों को जिव समझे या न समझे तथापि वे अपना शासन

सिर पर चला रहा है। और सिर को उसके आधीन होना ही पड़ता है, जन्म मरण बन्ध हुए कर्मों को भोगने के द्वार हैं। और उसके द्वारा एक गति में से दूसरी गति में ले जा सकते हैं।

मकान बांधने में जितनी मुश्किली है उतनी तोड़ने में नहीं, वैसे ही कर्म बांधने में जितना कष्ट है उतना तोड़ने में नहीं। बालक माँ बाप को डरावे जिससे माँ बाप भय नहीं पाते। वैसे कर्म हमारे बालक हैं हमने उनको जन्म दिया है ऐसे संयोगों में ज्ञानी आत्मा अपनी कर्म सन्तान से भय नहीं पाते। कर्म बांधने में अनन्त काल गया तोड़ने में इतने समय की जरूरत नहीं है, क्यों कि आत्मा कर्म से अनन्त बलवान है।

कर्म बन्ध देखने में नहीं आता किन्तु विपाक (कर्म फल) अनुभव में आता है। जैसे दवाई शरीर में क्या किया करती है, यह देखने में नहीं आता परन्तु उसका परिणाम जाना जाता है। इन कर्मों से सब कर्म वेदनीय (फल देने वाले) हैं। अन्य कर्मों का वेदन लोक प्रसिद्ध रूप से नहीं होता वेदनीय कर्म का फल सुख दुःख लोक प्रसिद्ध होने से वेदनीय कर्म पृथक् गिना है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय मोहनीय और अन्तराय, ये चार घाती कर्म हैं। शेष चारों अघातीय हैं। घाती कर्म का सम्बन्ध आत्मिक गुणों के साथ है और अघातीय कर्मों का सम्बन्ध शरीर के साथ। घाती कर्म जितने बड़े हैं उतने ही यत्न पूर्वक नाश होने वाले भी हैं। घाती कर्मों का क्षय होने के बाद अघातीय कर्मों का क्षय होता है। घाती कर्म यत्नों से नाश होते हैं। 'ज्ञान' नहीं आता हो तो परिश्रम से सीखा जा सकता है, 'दर्शनावरणीय निद्रा आती हो तो यत्न से उड़ाई जा सकती है। 'मोहनीय कषाय का उदय हो तो भावना से या दृढ़

भावना करने से कषायों को रोक जा सकते हैं। पुरुषार्थ से अन्तराय कर्म का भी नाश हो सकता है। परन्तु अघाती कर्म वेदनीय आदि भोगने ही पड़ते हैं। भावना आदि से वेदनीय कर्म नष्ट नहीं होते। आयुष्य में घट बढ़ नहीं हो सकता। नामकर्म—शरीर के रूप रंग तथा स्वरूप में भी परिवर्तन नहीं हो सकता। गोत्र कर्म—नीच कुल में जन्मा हुआ उच्चकुल का नहीं गिना जा सकता। इस प्रकार घाती कर्म का नाश स्वाधीनता पूर्वक शीघ्र हो सकता है, किन्तु अघाती कर्म तो भोगने ही पड़ते हैं। आयुष्य कर्म की प्रकृति उसी भव में वेदाती है। शेष कर्मों की प्रकृति उसी भव में या अन्य भवों में भी वेदाती है।

योग और कषाय पर कर्म का आधार है। किसान सुथार लोहार, मोची, दर्जी आदि कायिक श्रम करने वाला मजदूर वर्ग में योगों की अधिक चपलता होती है और उनमें योग चपलता के कारण कषायों की मन्दता होती है। जब गद्दी तकिये पर बैठकर आराम करने वाले व्यक्ति या कुर्सी टेबल पर बैठ रहने वाले वकील जज या अन्य अफसरों के योग शरीर आदि शांत स्थिर होते हैं और स्थिरता के प्रमाण से उनमें कषायों की तीव्रता होती है। ऐसे जीवों के कर्म बन्ध में काय भिन्नता से बन्ध भिन्नता होती है।

प्रदेश में कर्म की विशेषता होने पर अनुभाग अल्प हो सकता है, जैसे आकाश में घने बादल चढ़ आने पर भी मात्र थोड़े छींटे होकर रह जाय बस कर्म भोगने में जैसे चेचक, जो दिखने में भयंकर है, पर वह अल्प अशाता का फल देकर रह जाता है। ऐसे रोगियों के लिए योगों की अशुभ प्रवृत्ति विशेष और कषाय की मन्दता के कारण उस प्रकार के कर्म उदयमान होते हैं। इससे विपरीत योग

मन्दता और कषाय की तीव्रता वाले जीव को मधु प्रमेह, दाह ज्वर, पेट शूल, मस्तक शूल आदि रोग होते हैं। जिन रोगों के कारण शरीर निरोग होकर और रोगी भयंकर असह्य मरणांत वेदना और कष्ट भोगते हैं।

वर्तमान में योग (मन वचन और काया) के प्रति निरोध लक्ष दिया जाता है, योगों से सावद्य प्रवृत्ति न होने के लिए सावधानी रखी जाती है। परन्तु कषायों की मन्दता एवं क्षीणता के लिए, कषाय निरोध के लिए अत्यन्त लक्ष दिया जाता है। योग मय पाप प्रवृत्ति के लिये लक्ष दिया जाता है, इससे अधिकांश भी कषाय जन्य पाप के लिए लक्ष इन में आय तो समाज तथा सम्प्रदायों में निर्दोष शांति मालूम हो। योगों के संवर की तरह कषायों का संवर किया जाय तो अन्य कर्म के बंध हो और अन्त में जीव कर्म रहित भी हो सके सब कर्मों में मोहनीय कर्म प्रधान है। कषायों के नाश से शेष सब कर्मों का नाश होता है और कर्मों का नाश से आत्मा कर्म रहित स्वस्वरूपी सिद्ध बन सकता है।



६—वेदनीय।

वेदनीय कर्म अघाती है। क्यों कि चाहे जैसी वेदना को ज्ञानी अपनी समझ कर वेदते नहीं है। दुःख त्रास क्लेश अपमान आदि असाता के संयोगों में ज्ञानी शांति वेदते हैं। कर्मोदय को निर्जरा मानते हैं, खुश होते हैं, इसलिए अघाती है। संयोगों को सुखदायक या दुःखदायक मानना मोहनीय की सत्ता है।

वेदनीय काल में दवाई अपना असर दिखाती है, वैसे दवाई उत्पन्न होने में हुए पाप वृत्ति आरम्भादि क्रिया भी अपना असर पहुँचाती है। वेदनीय काल में समझदारी आती है, अनित्यता व अन्य २ विचार आते हैं और मोहोदय के समय सब भान भूला जाता है। वेदनीय कर्म का डंक बिच्छू जैसा है जो खुद आराम की नींद सो नहीं सकता, न दूसरे को सोने देता है। वैसे वेदनीय के उदय से स्वयं आकुल व्याकुल बनता है और दूसरों को भी गभरा देता है।

मोहनीय का डंक सर्प दंश सा है। सर्प दंश वाला जीव अपनी वेदना व भान भूल कर घन की नींद लेता है। उस वक्त उसको नीम के पत्तों का कडुआपन भी मालूम नहीं होता। वैसे मोहाधीन जीव मोह में आसक्त बनकर मोह वर्धक दुःखदायी संयोगों को परम सुखधाम समझकर उसके लिए दिन रात दौड़ धूप करता है और उसके अभाव में रोता है, दुःख मानता है शोक करता है। अज्ञानियों की समस्त प्रवृत्ति वेदनीय के संयोग घटाने की और मोहनीय के संयोग बढ़ाने की होती है। वेदनीय से मोहनीय की भयंकरता अधिक है। यदि यह समझ में आवे और वेदनीय के लिए जितने प्रयत्न किये जाते हैं, उतने मोहनीय के मिटाने के लिए किये जाय तो जीव शीघ्र मोक्षगामी हो सके। वेदनीय के संयोग निर्जरा का कारण हैं और मोहनीय के संयोग सिर्फ बन्ध हेतु अनन्त संसार भटकाने वाले हैं।



१०—मोहनीय

हिताहित का भान न होने दे वह मोहनीय, शारीरिक रोग के ऑपरेशन के लिए क्लोरोफार्म की आवश्यक्ता है, वैसे मोहजन्य रोग दूर करने के लिए ज्ञान रूप क्लोरोफार्म की आवश्यक्ता है। घूमने से थकावट हो और थकावट से निद्रा आवे वैसे जीवों को ८४ लाख जीवयोनियें भटकने से थकावट लगी है और जीव यहाँ अपना भान भूलकर मोहनिद्रामें नींद ले रहे हैं। मोह अग्नि में अखिल विश्व जल रहा है। वेदनीय से मोहनीय की सत्ता अति सूक्ष्म और भयंकर है। मोह की तीव्र प्रबलता के पहाड़ नीचे समस्त विश्व दब रहा है। उसके लिए आँख ऊंची करने भी समर्थ नहीं है। मोहनीय कर्म अनन्त संसारीत्व का पालक और रक्षक है। मानव पर मोह का सख्त पहरा है जिससे वह अनादि संसार के निज स्थान को छोड़ नहीं सकता। मोह एक है और जीव अनन्त है, तद्‌पि अनंत होकर सभी में प्रविष्ट होता है और अपना साम्राज्य चलाता है। मोह परम जागृत रहता है। वह क्षणमात्र का प्रमाद नहीं करता वह गिन २ कर सबकी सम्हाल लेता है। उस (मोह) की सत्ता समस्त विश्व में व्यापक है।

जीव स्थावर से मनुष्य पद तक पहुँचता है इस बातका मोह को बड़ा मालूम होता है। इसी से मनुष्यों को धक्का मार २ कर पुनः जीवको स्वस्थान-स्थावर में ले जाने की मोह प्रेरणा करता है और अपना बल मानव के पतन के लिये रचता है। मोह को चिंता है कि, शायद मानव मेरा विरोध करें। इसी से तो मानवों में विरोध की सम्यक् समझ आने के पहिले ही खान पान, मिठाई मेवा, स्त्री-पुत्र कुटुम्बके बंधन में बांध कर विषय कषाय में गुलतान बना कर   भुलाता है।

मोह मानता है कि, अग्नि और अरि का प्रारंभ से ही नाश करना चाहिए। इस लिए मानव को ऊगती वय में ही मोह फसाता है। क्योंकि, मोह भावना और धर्म भावना का अनादि वैर है। मोह व परिवार को धर्म भावना का नाश किए बिना चैन नहीं होता। तमाम परिवार का स्वभाव एकसा है। मोही जीव महामोह के १८ पापस्थान रूप क्षत्राल का अपने महल में स्वागत करता है और १८ पापों की नियुक्ति रूप यम राज के सन्तानों से कहता है कि, आइए, मैं आप को नहीं पहिचानता। ऐसी परिस्थिति में मोह थोड़ी लालच देकर अनन्त काल में हैरान हो ऐसे काम कराता है और अज्ञानी जीव प्रसन्नता पूर्वक पाप कार्य करता है।

माछीमार चने की लालच से मच्छियों को फसाता है, वैसे मोह माछीमार विषय भोगों की लालच से जीवों को नरकादिगति में फँसाता है। मोह का काम जीवों के सद्गुणों का नाश करके दुर्गुणी बनाने का है। मोह नाटक का मेनेजर है और जीव नाचने वाला नट है। सूत्रधार की आज्ञानुसार वह विविध भेष धारण करता है। वेदनीय, नाम, गोत्र और आयुष्य आदि कर्म का स्वभाव तो अच्छा और बुरा दोनों तरह का है, परन्तु मोह का स्वभाव अति दुष्ट है उसका दूसरा प्रकार ही नहीं है। मोह बाजपक्षी की तरह जीव पर एकाएक हमला करता है अज्ञानी जीव मोह की आज्ञा मानते हैं। मोहनीय कर्म कमाता है, शेष सात कर्म बैठे चट खाते हैं। मोह महा शूरवीर है। क्षण भर में विश्व को चकाचौंध कर देता है।

चक्रवर्ति और इन्द्रों को भी मोह से नचाये नाचना पड़ता है। राजा या देवता एक दूसरों का अपमान करते हैं, पर मोह का

अपमान कोई नहीं कर सकता। लोग अन्य कर्मों को दुश्मन रूप मानते हैं और मोह को मित्र रूप, यह आश्चर्य है? त्यागी तपस्वी और वैरागी को भी मोह नचा सकता है। बहुरूपिया की तरह मोह विभिन्न रूप धारण करके विश्व को फंसाता है। मोह विश्व का तंत्र चलाता है। मोह के अभाव में विश्व का समस्त व्यवहार नष्ट होजाय। विश्व को चलाने का निभाने का पोषण देने का कार्य मोह का ही है। मोह ने बलात् सब जीवों में अपना डेरा जमा रखा है। महामोह का शरीर अविद्या से बना है, जिससे यह दुर्गुणों को सुख मनाता है। मोह का अनादर कोई विरल व्यक्ति ही कर सकता है।

मोह राजा की पटरानी 'महा मूढ़ता' है। सेनापति "मिथ्या दर्शन" है। महामोह ऐसा कोप उत्पन्न करता है जो ज्वाला मुखी को भी बुझा देता है, मेरु को भी लघु दिखाव ऐसा महान् रूप उत्पन्न करता है, मालिन को भी सुजाव एसी माया उत्पन्न करता है, स्वयंभूरमण समुद्र को बिन्दु मनावे एसा क्षोभ पैदा करता है।

मोहाधीन जीव दुःख होने वाली भूमिका पर बसे हुए हैं। मोह मय प्रकृति के प्रभाव में संसार विष के स्थानों को अमृत मय और दावानल के स्थानों को सुधामय समझता है। मोह के कारण जीव अपना जीवन अन्यों के संहारार्थ बिताते हैं और मोह के अभाव में अपना जीवन विश्व-सेवा के लिए बिताते हैं। मोहाधीनों का जीवन अनार्य जंगली या पशु-जीवन से बढ़कर नहीं होता। मोह के कारण धर्म द्रोही जीवन बिताया जाता है। मोह की भाफ में अन्य कइयों का भक्षण होजाता है और अन्तमें काल के कवल होते हैं। मोहाधीन अन्यों को कुचल देता है और स्वयं काल द्वारा एक साथ कुचला जाता है।

पशु सृष्टि निर्बलों को दबाकर, कुचलकर अपना जीवन निभाती है, वैसे ही मोह की प्रधानता के कारण मानव सृष्टि भी पशु सृष्टि तुल्य अत्याचारी बनती है। विश्व की मारामारी-कुचला कुचली भीषण प्रचण्ड क्लेश मय जीवन और स्वच्छन्द मोहमय जीवन से ही उत्पन्न होती है। मोह के वश की वासना में मानव अपने आपको फाड खाता है। जीवों को मोहमय जीवन और विषय वर्धक वार्तालाप के अलावा कुछ भी पसन्द नहीं आता।

कबूतर और चूहे में भी इतनी सामान्यसमझ है कि, वे अपने घातक बिल्ली और कुत्ते से दोस्ती नहीं रखते। इतनी समझ भी जिसमें हो ऐसे समझदार मोह के संयोगों से सदा सावधान रहें। मदिरा सबल और निबल पर असर करता है, परन्तु मोह मदिरा निर्बलों पर ही असर कर सकता है। अग्नि का तिनका लाखों मन रूई को जला सकता है, वैसे मोह जन्य राग द्वेषाग्नि अनन्त जन्मों की पुण्याई का नाश करता है। मोह की मदोन्मत्त दशा में प्रभु पथ को पाप पथ और वीतराग वाणी को वैरी वचन मानते हैं। मोक्षार्थी जीवों को दया पात्र मानकर अपने (मोह मय) जीवन को सुभागा मानते हैं। मोह की इतनी भयंकरता होने पर भी अनादि परिचय के कारण वह भयंकरता भूली जाती है और विपरीत दिशा में बहाव होता है। आत्मा अनन्त बल की धारक है। स्वयं जैसा बनना चाहे बन सकता है, मोह की सत्ता का नाश कर सकता है। सूर्योदय होने पर अनन्त अंधकार क्षण मात्र में नाश हो जाता है वैसे ज्ञानोदय होने पर अनन्त काल की मोह की सत्ता नष्ट हो जाती है। बिल्ली को देखकर चूहे भग जाते हैं, वैसे ही ज्ञान के आने पर मोहमय चूहियां भग जाती हैं और आत्मा निजानन्द का अनुभव करता है।

११–योग ।

योग शब्द का अर्थ जुड़ना या मिलना होता है। आत्मा, मन वाणी और देह के साथ मिलकर बहिर भाव को प्राप्त होता है, इस व्यापार को योग कहते हैं। आत्मा में कर्म ग्रहण की शक्ति होने की स्थिति विशेष को भाव-योग कहते हैं। भाव योग के निमित्त से आत्म प्रदेश में परिस्पन्दन (चांचल्य) उत्पन्न होने का द्रव्य योग कहा जाता है।

कर्मों का आत्मा के साथ बन्ध होने में योग और कषाय निमित्त रूप हैं। बिना कषाय का योग कर्म बन्ध का [illegible] हो सकता है परन्तु जहां कषाय हो वहां योग की अनिवार्यता होती है। समारी दशा में योग छूट नहीं सकता। पर आत्मा चाहे तो कषाय को छोड़ सकती है।

कषाय से स्थिति और अनुभाग बन्ध होता है और योग से गर्भावस्थी जैसे विषय कषाय अनेक विकार पैदा करता है। महामोह की निद्रा में विवेक रूप चक्षु बन्द हो जाते हैं। निद्रा में मानवी जीवन के सब प्रसंग भूल जाते हैं, वैसे मोह निद्रा में भी पुण्य पाप, स्वर्ग नर्क बंध और मोक्ष के विचार भी भूले जाते हैं।

स्त्री, पुत्र और धन का मोह नहीं होता तो मनुष्य मोक्ष दीपक का पतंग बनकर अप्रमत्त भाव से उस दिशा में प्रयत्न करता। मोह की अविद्यामय अतिजीर्ण शरीर है तथापि यह बालक जैसा ताजी स्फूर्ति वाला है। अनन्त काल का जीर्ण होने पर भी वृद्ध नहीं है। नित्य नयी बाल्यावस्था जैसा प्रतीत होता है। मोह अनित्य को नित्य, अपवित्र को पवित्र दुःखद को सुखद अनात्म को आत्मरूप, यों विपरीत रूप अनुभव कराता है। मोह के अनादि जीर्ण देह में जवानी का जोश है।

दूसरे पाप काले मालूम होते हैं, जब कि मोह व हास्यादिपाप सफेद मालूम होते हैं, जिससे उसके पाश मे सज्जन भी फँसते हैं। मोह मीठा जहर है। जिससे उस विष को अमृत मानकर जीव शौक से पीता है।

मोह के सोलह विचित्र प्रकार के तोफानी लड़के हैं, उन सोलह बालकों को अज्ञानियों ने मुँह लगाकर लाडले बनाये हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ इनके चार २ भेद हैं, यों सोलह बालक कहे हैं। क्रोध, मान का द्वेष में और माया लोभ का राग मे अन्तर-भाव होता है।

यदि मोक्ष की गाडी का किराया दो रुपया लगता हो तो मोहाधीन जीव तो पुत्र और धन के मोह से सवा रुपया ठहराने की कोशिश करेगा। जीवों को धनादि का मोह मोक्ष से भी अधिक मूल्यवान मालूम होता है। दान, शील, तप और भावना आदि मोक्ष में लेजाने वाली गाड़ियाँ हैं तथापि मोहाधीन जीवों का उसमें बैठना क्यों नहीं सुहाता!

मनुष्य की कमर टूट जाय तो सब अंग नीचे झुक जाते हैं, वैसे ज्ञान के दंड से मोह कर्म की कमर तोड़ दी जाय तो सब कर्मों का नीचे ढेर हो जाय। मोह की सत्ता से जीव अपने आपको पीस कर चूरा बनाता है, बिलकुल निर्माल्य बन जाता है, जिससे उसको आत्म भान नहीं रहता है। मकड़ी अपनी बनाई हुई जाल मे फँस कर मृत्यु पाती है, वैसे जीव अपने मोह जाल मे फँसकर मरता है। मोह से मनुष्य अपने आपको मृत्यु से भी अधिक निर्माल्य बनाता है। मोह के बनाये हुए Bomb से वह स्वयं चूर हो जाता है। मोह अग्नि मे जलकर वह स्वयं राख का ढेर होजाता है। मोह

के प्रताप से तीव्र वासना द्वारा बिका हुआ है। मोहमय जीवन श्राप समान है। मोह द्वारा अज्ञानी जीव घास की तरह विषय कषाय अग्नि में होम जाते हैं।

प्रकृति और प्रदेश बंध, कषाय योगरूप स्वच्छ वस्त्र पर का रंग है। बिना रंग का वस्त्र हो सकता है वैसे कषाय बिना भी योग प्रवृत्ति हो सकती है। अपने सब प्रकार के योगों को कषायों से मुक्त रख कर उच्च, प्रशस्त आत्माभिमुख रखना धार्मिकता का मुख्य लक्षण है। अपनी मनोवृत्ति वाणी और शरीर चेष्टा में जितना कषाय का अंश हो उसे दूँढ कर बहिष्कार करने में आन्तरिक जीवन की सार्थकता है। जहाँ सिर्फ शारीरिक जीवन बिताने का हो और आध्यात्मिक जीवन की गंध भी न हो वहाँ कषाय का तारतम्य मन्त्रुपा होता है।

मनुष्य में से बुद्धि, विचार, विवेक सारासार के विचार की शक्ति घटाने में आवे तो वह पशु तुल्य है। जहाँ तक आत्माभिमुख नहीं होता वहाँ तक उसकी बुद्धि, विचार आदि शक्तियाँ उस पशु बनने में साथ देती हैं और पशु बुद्धि के अभाव में वृत्तियाँ का मर्यादा में उपयोग करता है, उन वृत्तियों को मनुष्य अपनी बुद्धि, शक्ति से बढ़ा कर विषय कषाय के तत्त्वों को अति भयानक बनाता है। मनुष्य को जो बुद्धि प्राप्त है वह विषय-कषाय को उत्तेजित करने के लिये नहीं किंतु आत्माभिमुख होकर विषय-कषाय को नाश करने के लिए मिली है। बिना आत्माभिमुख हुए मानव पद पद पर अपनी शक्ति का दुरुपयोग करता है।

अज्ञानवशात् आत्मा को कषाय का नाद मधुर लगता है। उस उस रंग की चमक पर अति प्रेम है जिससे वह उसे सहन

छोड़ सकता। जब मनुष्य स्वेच्छा पूर्वक विषय कषाय का त्याग नहीं करता तो बलात्कार से प्रकृति छीनकर उस पर उपकार करती है। दुःख के प्रहारों से भी कुदरत विषय-कषायों को छीनकर जीव की घोर पतन से रक्षा करती है।

कर्म की गति अथवा विधि का विधान ही ऐसा है कि वह मनुष्य को परमात्म स्वरूप में बदलना चाहती है। प्रकृति अनेक रीत्या मानव को शुभ सन्देश देती है। सदुपदेश नहीं माने तो दुःख देकर भी उसकी आँखें खोलती है। फिर भी मनुष्य न माने तो जहां विशेष सुख को स्थान न हो ऐसी जगह उसे भेजती है।

मन, वचन और शरीर की सब क्रियाओं को पवित्र, उज्ज्वल और आत्म विकास के मार्ग के अनुकूल बनाने में अपना पुरुषार्थ है। मन का पवित्र, निर्मल, निष्पाप अवस्था में आत्मा का प्रतिबिम्ब स्वच्छ और यथार्थ पड़ता है। शरीर का उपयोग आत्मोन्नति के लिए ही करना चाहिए। जो मन, वचन और शरीर आत्मा को बन्धन रूप हो तो उनकी प्राप्ति निरर्थक और अकल्याणकारक है वर्तमान के राक्षसी यन्त्रवाद युग में मानवों के मन, वाणी और शरीर के योग ऐसे भयंकर, राक्षसी और जड़ बने हैं कि वर्तमान जगत की सर्व सम्पत्ति, वैभव विलास और सुख के साधन नारकी के जीवों को दिया जाय तो वह लेने के लिये तैयार नहीं होवे। क्यों कि वर्तमान के विषय विलास और शृंगार के सुख नरक के दुखों से अनन्त दुखों के भण्डार रूप है। वर्तमान के राक्षसी यन्त्रवाद के और विज्ञान के विलासी साधनों को विनाश के साधन मानते हैं और नारकीय दुखों को अपना विकास धाम तीर्थयात्रा मानते हैं। नारक जीव प्रति समय दुःख युक्त हो रहे हैं। जब वर्तमान का वैज्ञानिक युग का विलासी जीव अपने मन वचन और

शरीर के योग से हर समय नरक के अनन्त दुःख के निकट जारहा है। उत्तम योगों की प्राप्ति उत्तमता के लिए मिली है, उसके दुरुपयोग से दुश्मन को भी दया उपजे ऐसे दुःखद संयोग पैदा होते हैं। अत योगों का अप्रमत्त भाव में प्रवर्ताना ही जीवन के योगों का साफल्य है।



१२-मन वचन काया।

मन—

चन्द्र सूर्य में से प्रकाश, पुष्प में से सुगन्ध और अग्नि में से उष्णता भरती है। इसी प्रकार मनो द्रव्य में से नित्य प्रभा भरती है। उसको अपनी शास्त्रीय भाषा में लेश्या कहते हैं। मन के परमाणुओं का असर हजारों वर्षों तक कायम रहता है। पवित्र पुरुषों के धर्म मय मन के परमाणुओं से धर्म स्थान पवित्र मानने में आता है। कारण कि वहाँ ऐसे परमाणु हैं। अत मन के विचारों को सदा पवित्र रखो। वायरलेस द्वारा मन के परमाणु हजारों कोसों तक जा सकते हैं फिर मन के परमाणु तो उससे विशेष सूक्ष्म एवं शीघ्र जाने वाले हैं। किसी के लिए अच्छे या बुरे विचार करने में आते हैं तो उनका असर चाहे जितनी दूर हो, हो जाती है।

मन आलमारी तुल्य है, उसमें विविध खाने (विभाग) हैं। हर एक में विविध विषय वस्तुएँ भरी हैं। जैसे विषय भरे हैं वैसे ही निर्दोष मैली वस्तुओं को स्पर्श मात्र नहीं किया जाता तो मैले विचार मनमें कैसे रक्खे जायँ ? या भरे जाय ?

पवित्र विचार वाले मानव जंगम तीर्थ स्थान हैं। वे जहाँ पैर रखते हैं, वहाँ शान्ति, प्रेम, त्याग, क्षमा, दया का वातावरण फैलता है, और अपवित्र विचार वालों के पदार्पण हो, वहाँ अशान्ति फैलती है।

वचन—

दूसरा व्रत (सत्य) दूसरी समिति (भाषा) और दूसरी गुप्ति (वचन) की मर्यादानुसार भाषा पर संयम रखने का प्रभु का फरमान है। लिखने में काना मात्र, बिंदी, पद, ह्रस्व, दीर्घादि की सावधानी रक्खी जाती है वैसे वचन बोलने में भी निरर्थक शब्द या काना-मात्रादि का उच्चारण न होने का ध्यान रखना आवश्यक है। वचन प्रयोग चिंतामणी से भी अधिक मूल्यवान है। धन की थैलियों से भी वचन की कीमत अधिक है। हृदय नापने के लिए वचन थर्मामीटर है। अतः बिना विचार के बोलना जोखम कारक है। अल्प भाषी को अल्प और बहुभाषी को बहुत पश्चात्ताप करना पड़ता है। प्रभु महावीर ने भी १२॥ वर्ष तक मौन रखा था।

बिना गोली के बन्दूक की आवाज निशाना करना नहीं तोड़ता, वैसे ही बिना वर्तन के वचन तथा उपदेश का असर नहीं होता। अतः ऐसे वचन बोलो, लिखो, विचारो चितवो कि, दुश्मन भी अपना वैर भूल जाय। अत्यधिक बोलने से शरीर में अनेक प्रकार के रोग भी उत्पन्न होते हैं, अतः यथा शक्ति कम बोलना वचन का संयम रखना आवश्यक है।

काया—

गन्दी हड्डियाँ मांस, लोहू चर्म के पिंड रूप काया है। धर्माराधना ही उसकी विशेषता-अच्छापन है। शरीर में से निकलता

श्वासोश्वास करदिया है। वनस्पति का श्वासोश्वास मनुष्यों के लिए अमृत तुल्य है। शरीर में ऐसे २ पदार्थ भरे हैं कि, जिन को बाहर निकाल कर देखा जाय तो नफरत आये। वैसे तो उस रास्ते से चलने का दिल नहीं होता। इस देह में अज्ञानी मोहित होते हैं। देह इतना अशुचिमय है कि, किंचित् असाता वाली रक्खी जाय तो कीड़े पड़ जाय। धर्माराधना की विशेषता न हो तो उदारिक शरीर मिट्टी के ठीकर से भी निकम्मा है।

हाड मांस, लोहू वात, पित्त, कफ, मलमूत्र, कृमि और नशा जाल पर से चर्म का ढकन हटा दिया जाय तो महा भयंकर और कौए कुत्ते का खाने योग्य देह दिखे। काया मलमूत्र, लोहू पीप की बहती गटर है। अशुचि पदार्थ बहते रहे, वहां तक शरीर की कीमत है। नहीं बहती नदी है कि काया मुर्दा समझी जाकर श्मशान योग्य होती है।

खेत में सड़ा गला खाद डालने से सुन्दर पुष्प फलादि उत्पन्न किए जाते हैं और शरीर रूप खेत में मेवा, मिष्टान्नादि डालकर मलमूत्र उत्पन्न किया जाता है। जिस मकान में सिंह सर्प आदि रहते हो उस मकान में कौन रहना पसन्द करे? कोई नहीं। शरीर रूप घर में सिंह सर्पादि से अत्यधिक भयंकर सवा पांच क्रोड़ रोग बसते हैं। ऐसे शरीर पर कौन ममत्व रक्खे? रत्नत्रय का आराधन देह द्वारा किया जाय तो साफल्य है, वरना निरर्थक है।



१३ विषय–कषाय।

आत्मा में विषय वासना की सड़क बनी है। उस पर विषय कषाय के घोड़े पूर्ण वेग से दौड़ते हैं। फोनोग्राफ की रेकार्ड की तरह आत्मा में विषय विकार के विचार भरे हैं, जिससे संयोग मिलते ही वैसी आवाज होती है। ज्ञान के विचार भर जाय तो वैसी आवाज निकले। रेकार्ड भरने वाला स्वयं ही है।

संसारी जीवों के मगजरूप तंबूर में विषय कषाय के तार जमे हैं जिससे बिना बजाये भी पवन की लहरों से वैसी ही आवाज निकलती है। मगज़ के तम्बूरे में से विषय कषाय के तार बदल कर ज्ञान क्रिया के तार बैठाये जाय तो वैसी आवाज निकलेगी?

गणित की संख्या क्रोड़ों अङ्कों की है, किन्तु एक भी संख्या या अंक लिखना नहीं आता, उस अंक ज्ञान निष्फल है। वैसे ही विषय कषाय की एकाध वासना का विषय बाकी हो तो सर्वस्व का नाश होता है।

चार पाये और चार ईसों में से एक भी कमी हो, वहां तक पलंग नहीं बनता वैसे आत्मा में विषय कषाय की लेश भी मात्रा हो, वहां तक आत्म आराधना नहीं हो सकती। मैले कपड़े पर रंग नहीं चढ़ सकता, वैसे विषय वासना का नाश हुये बिना आत्म ज्ञान का रंग चढ़ नहीं सकता।

विषय वासना देह है तो कषाय उसकी छाया है। "जहां काया वहां छाया" के न्याय से 'जहां विषयों का वास, वहां कषायों का वास है'।

पिंजरे में फँसे हुए पक्षी को पराधीन हो मांसाहारी की हद्दी में उलझना पड़ता है तो इच्छा-पूर्वक विषय कषाय के पिंजरे में फसने वालों की क्या गति होगी ? कूप में गिरने वाला कभी बच भी सकता है, परन्तु विषय कषाय कूप पाताली कूआ है, उसमें गिरने वाला कभी बच नहीं सकता। विषय कषाय का प्रेम काले नाग को गोद में बैठाकर दूध पिलाने तुल्य है। विषय कषाय के शरण से मरण का शरण अधिक श्रेयस्कर है।

परलोक का अविश्वासु नास्तिक विषय कषाय का शरण लेते हैं। विषय कषाय से विशेष जुल्मगार विश्व में कोई नहीं है। विषय कषाय मय जीवन बिताना रथ के मुर्दे की तरह विश्व में दुर्गंध फैलाने समान है। विषय कषाय के दु:खद कैदखाने के कैदी न बनें। विषय वासना का नाश किये बिना धर्म भावना रखना, वह दुर्गंधयुक्त मद्य बर्तन में पानी भरने समान है।

विषय कषाय दिखने में मक्खन का पिंड है, पर है चूने का पिंड। खाने वाले के आंत काट देता है। विषय कषाय के वशी भूत होने वाला स्वयं अपनी कब्र खोदता है। जिसको अपना विनाश करना हो वही विषय कषाय का सेवन करे। विषय कषाय के एंजिन पीछे दु:ख के डिब्बे लगे हुए हैं।

मनुष्य विषय कषाय के अलावा अन्य किसी का भी गुलाम या दास नहीं है। विषय वासना के आधीन जीव अपने लिये नरक निगोद की तैयारी करता है। विषय वासना का संयम करना महत् पुण्य है।

विषय कषाय युक्त मानव संसार को पशु संसार को भी अतिक्रांत करता है। विषय कषाय के नाश किए बिना की क्रियाएं रेतके रस्से बटने समान है। जो पशुयोनि के निकृष्ट है वही विषय में रत रहता है। आश्चर्य है कि, मनुष्य के गुलाम होने में लज्जा मानने वाले विषय कषाय के गुलाम होने से क्यों लज्जित नहीं होते! बिगाड़ करने वाले नौकर या जानवर से भी प्रेम नहीं किया जाता, तो अनन्त काल से दुःख दावानल में रखने वाले विषय कषाय रूप विषैले तत्वों से क्यों प्रेम किया जाता है?

इन्द्रियजन्य सुख पशु हुए बिना भोगे नहीं जाते। गटुरिये के कीचड़ से विषय कषाय का कीचड़ अनन्त मलीन है। मैले को घर में रखने से रोग फैलता है और खेत में फेंक देने से मधुर फल देने में साधक बनता है, बस विषय कषाय को आत्म मंदिर में रखने से आत्मा का पतन होता है और बाहर फैंकने से स्व-पर का श्रेय होता है। विषय कषाय के संग से सर्प और अजगर का संग अल्प हानिप्रद है। विषय कषाय को फांसी पर लटकाओ, अन्यथा वे तुम्हें फांसी पर लटकावेगा। विषय कषाय के स्वामी मिट कर सेवक मत बनो। विषय कषाय बहादुरों को कहते कि, तुम्हारा स्पर्श मात्र हम नहीं करेंगे। अज्ञानी यथवत् है उन्हीं को विषय कषाय नाथ रखा सकते हैं।

वीतरागता के आसन पर विषय कषाय विराजमान होने से अपना अपमान समझकर वीतरागता लौट जाती है। शरीर से भी विषय कषाय का बंधन विशेष है। शरीर तो अनन्तवार छूट गया, परन्तु विषय कषाय आज तक एक बार भी नहीं छूटा है। आत्मा की पवित्रता विषय कषाय के पर्दे पीछे छीप गई है। अपने शरीर पर अग्नि का तिनका नहीं रखा जाता तो विषय कषाय की भाव अग्नि में क्यों सुलगाया जाता है?

विषय कषाय की मन्दता से आत्म प्रकाश बढ़ता है। शरीर के लिए अच्छे से अच्छा खुराक दिया जाता है, तो आत्मा को शत्रु भी न दवे ऐसा बुरे से बुरा विषय कषाय का खुराक क्यों दिया जाता है? शरीर की तरह आत्मा पर भी दयालु बन कर दया करें। विषय कषाय वृत्ति पिशाच वृत्ति है। पर नीचे जलनी विषय कषाय की लका बुझा दो।

निबल पशु को अधिक मक्खियां सताती है वस निर्बल आत्मा को विषय कषाय की वृत्तियां अधिक सताती है। विषय कषाय की कालिमा युक्त हृदय का मैल बनाये बिना भेष धारण करना मायाचार है। विषय कषाय का त्याग न हो सके तो सत्य के खातिर कास्त्र पहिन कर पाप से बचें। जंगली बाघ शेर से भी विषय-कषाय की क्रूरता अत्यधिक है।

अनन्त जन्म मरण का उपादान विषय कषाय है। उनके त्याग से निर्वाण की प्राप्ति होती है। लोह का जंग लोह को खाता है, वैसे विषय कषाय का जंग नित्य विषयी का नाश करता है।

विषय कषाय-वृत्ति सज्जनों के जीवन का कलंक है।

विषम मार्गों में वीतरागता रत्न सब सच्ची मित्र है अन्य शत्रु है। नरक के बंध को न चाहते हो तो विषय कषाय के बंधनों को छोड़ो। अपने अन्त करण में नरक की ज्वाला प्रकटाने के लिए विषय कषाय रूप घृत मत होमो।

विषय कषायी वृत्तियों का वध करना ही सत्य यज्ञ है।

विषय कषाय के विचार करना, भौंरी के छाते में लकड़ी लगाना है, अपने हाथ स्वयं पीड़ा पैदा करना है। विषय कषाय

पागल कुत्ते को कोई नहीं बचा सकता तो पांच इन्द्रियों और समस्त अंगोपांग से जो पागल बना है, ऐसे विषयी को कौन रक्षा कर सके ? रत्नत्रय को छोड़कर हिंसा विषय कषाय का शरण न लें। खरगोश जैसा पशु सैकड़ों शिकारी कुत्तों में से [illegible] जाता है तो अनन्त शक्तिशाली आत्मा विषय कषाय का [illegible] नहीं बन सके ? विषय कषाय अशुचि का पिंड है। मल-मूत्र के [illegible] में प्रमाद नहीं किया जाता तो फिर विषय कषाय के [illegible] मय पिंड के त्याग में प्रमाद क्यों किया जाय ? [illegible] विष देह का नाश करता है वैसे विषय कषाय [illegible] पुण्य का नाश करता है। परमाधामी देव [illegible] समय हलके, (निर्जरा कराकर) बनाते हैं [illegible] परमाधामी देव समय समय पर जीवों को [illegible] है। अतः निरन्तर सावधानी की आवश्यकता है।



१४—कषाय ।

पशुओं में कषाय-वृत्ति स्वभाविक है। साधन भी वैसे ही हैं। वृक्षों में कांटे, अग्नि में उष्णता, गाय, भैंसों को सींग, पक्षियों को तीक्ष्ण चोंच, बिच्छू को डंक, सांप में विष, सिंह बाघ रीछ आदि निशाचरों को नाखून दांत और दाढ़ तथा उनकी भयंकर शारीरिक आकृति, सांप में क्रोध सिंह, बाघ आदि में क्रूरता, लोमड़ी में लुच्चाई कुत्ते में ईर्षा, मोर में मान, पशुओं में माया प्रतीत होते हैं, वैसी वृत्ति उनमें होना आवश्यक है। जो कुत्ते में द्वेष और ईर्षा नहीं होती तो उसके पास का कुत्ता या अन्य पशु उस रोटी के टुकड़े न खाने देते और उसे भूखे मरना पड़े। गाय, भैंसों को सींग न हो तो वे अन्य पशुओं से अपनी रक्षा कैसे कर सकें? सांप के काटने का भय न हो तो उसको हरकोई सतावे। पशु संसार की आकृति में और स्वभाव में ही कषाय प्रतीत होता है परन्तु मनुष्य अनन्त पुण्यशील होने से जन्म के साथ ही सुख के साधन यथ पुण्य लाता है, तथा जन्मते ही उसके रक्षक माता पिता होते हैं। जब कि पशुओं के पास अपनी रक्षा के लिये कषाय या सींग आदि के अलावा अन्य साधन नहीं होता। मनुष्य चाहे जैसे क्रोधी को भी अपनी मीठी वाणी द्वारा शांत कर सकता है समझा सकता है। मनुष्य की आकृति में, शांति, क्षमा, धैर्य गंभीरता आदि गुण प्रकाशमान हैं। पशु जैसी क्रूरता और भयंकरता मनुष्य के चेहरे पर न होना चाहिए। मानव देह पर पशु जैसे सींग शोभा नहीं देते। वैसे ही पशुसी कषायवृत्ति भी नहीं शोभा देती। कषाय करने वाला, मनुष्य मिटकर पशु होता है। कषायकरने वाले मनुष्य पर पशु जैसे सींग चाहिये, जिससे वह कषाय करने योग्य माना जाय।

मनुष्य को अपने पूर्व पशु जीवन की कषाय प्रकृति याद आती है, जिससे कषाय-प्रवृत्ति से पशुता प्रकट करता है और मानव प्रकृति से विरुद्ध-पशु प्रकृति के अनुकूल कषाय का आविष्कार करता है। क्रोध के लिए मनुष्य के पास सींग, नाखून जहरीले दांत, दाढ़ डंक या विष न होने से मनुष्य विष मय पदार्थ विष-मय शब्द तथा तलवार, भाला, बर्छी तोप बन्दूक, मशीन गन और गैस आदि बनाकर क्रोध वृद्धि के साधन बनाते जाते हैं।

मान कषाय पोषने के लिए यह धनवान, यह निर्धन, यह मूर्ख यह चतुर आदि शब्द आज रच कर तथा मान-पोषक साधन, गाड़ी घोड़ा मोटर हवाईजहाज बाग बगीचे बंगले हवेलियां और विविध प्रकार के वस्त्र, पात्र और आभूषणों का आविष्कार किया है और नित्य नये साधन बढ़ाते जा रहे हैं।

माया—अपने अपराध छिपाने के लिये वकील, बरिस्टर जज कचहरी आदि का शरण लिया जाता है और सत्य को असत्य और असत्य को सत्य बनाने वाले वकील बरिस्टरों की संख्या बढ़रही है।

लोभ को बढ़ाने के लिए अनेक पाप मय धन्धे, व्योपार, नौकरी दलाली शराफी, बैंक बीमा कम्पनी आदि साधन बढ़ रहे हैं। इस रीत्या कषायों को पुष्टकर मनुष्य अर्धपशु बनता है और मृत्यु के बाद पूर्ण पशु बनता है।

कषाय के पाप में से वीतरागी मुनि का भेष धारण करने वाले भी नहीं बच पाये।

त्यागी—वर्ग ने भी अपनी कषाय वृत्ति को पुष्ट करने के लिए अपने भेष में शोभ ऐसी विविध शोध की है। कषायों के त्याग से पशु में से मानव क्रमश समदृष्टि, श्रावक और साधु होते हैं। जहां तक कषाय हैं, वहां तक मनुष्यत्व समदृष्टि श्रावक और साधु पद के लिए कलंक है। इसी लिए शास्त्रकारों ने कषाय नहीं —— का बार बार आदेश दिया है।

१५–चार कषाय रूप सर्प।

क्रोध रूप सर्प की आँखें मध्यान्ह के सूर्य जैसी लाल होती हैं। जीभ बिजली के चमत्कार जैसी चंचल होती है, भयंकर विष से भरी दाढ़ होती हैं, उल्कापात व अग्नि जैसी भयंकर प्रकृति होती है। जिसको क्रोध सर्प काटता है वह कार्य अकार्य हिता हित का विचार नहीं कर सकता है।

मान रूपी सर्प मेरु शिखर से भी मोटा है। उसे आठ मद रूपी आठ फण हैं। जिसको मान रूपी सर्प काटता है वह बड़े ज्ञानी की भी शर्म नहीं रखता महात्माओं के वचनों का भी अनादर करता है।

माया-नागिन दिखने में बड़ी सुन्दर है। वह आत्मा की तह में पहुँचकर अपना विष फैलाती है। इस सर्पिणी ने बड़े सर्पों से भी अधिक विष संचय कर रक्खा है। उसका विष सविशेष भयंकर है। यह नागिन शुभरूप से आत्मघात करके अपना विष फैलाती है।

लोभ सर्प जिसको काटता है, उसका पेट विष के कारण फूल कर समुद्र जितना बड़ा बन जाता है। उसमें चाहे कितनी ही चीजें भरो, पेट नहीं भरता। सब दुःखों का राजमार्ग यही सर्प है। यह नित्य अपना शरीर बढ़ाता जाता है।

चार कषाय रूप चार सर्प समस्त विश्व को सदा त्रस्त बनाये रखते हैं। ये चार सर्प जिसे काटते हैं उसे कोई बचाने में समर्थ नहीं है। शान्त दयालु पुरुष चार सर्पों के साथ रमते रहना पसन्द नहीं करते। परन्तु अज्ञानियों को इन सर्पों से खेलने का शौक होता है। फलतः ये सर्प अज्ञानियों का भक्षण करते हैं। चार सर्पों को पकड़कर ज्ञान के करंडिये में डाल दिये जाय तो वे बाहर निकलने न पावें और कड़ी दृष्टि रखने से रक्षा हो सकती है। तभी शाश्वत अनन्त सुख प्राप्त हो सकता है।

१६–क्रोध–क्षमा।

क्रोध करके बालक को भयभीत करने से बालक की मृत्यु भी हो सकती है, ऐसा डॉक्टर एवं शिक्षाविदों का मत है। क्रोध करने वाले के थूंक को चाटने वाला भी मृत्यु को प्राप्त कर सकता है, ऐसी अमेरिकन डॉक्टरों की मान्यता है। क्रोधी को बाइ तथा हिस्टिरिया का रोग भी लग जाता है।

जीवन में एक बार विष खाने वाला या अग्नि में गिरने वाला मृत्यु को प्राप्त कर लो नित्य ही अनेक बार क्रोध रूप विष का भक्षण करने वाला तथा क्रोध रूप अग्नि में पड़ने वाले की कितनी दुर्गति हो सकती है?

बाड़ जैसे संयोगों में भी अग्नि में गिरना कोई पसन्द नहीं करता, इसी प्रकार बाड़ जैसे संयोगों में भी क्रोध रूपी अग्नि में नहीं गिरना चाहिए।

अग्नि में पड़ने से शरीर की हानि होती है। किन्तु क्रोध से तो आत्मा को अनन्त गुणी हानि होती है। कारण कि द्रव्य अग्नि से क्रोध की भाव अग्नि अनन्तगुणी भयंकर है।

क्षमा मय मरण उत्तम है, किन्तु क्रोध मय सागरोपम का स्वर्ग जीवन भी नारकीय जीवन से अधम है। क्रोधी को उत्तर देना वह अग्नि में घी होमने के समान है। जब छाछ तथा दूध का एक भी बूंद व्यर्थ नहीं फेंका जाता तो मोती से भी महँगे वचन क्रोधाग्नि में किस लिए होम जायें?

क्रोध करना यह विषैली वृत्ति है। यह वृत्ति अपने मन को तृप्त करने का साधन है। क्रोध में नामर्दी है। क्षमा में पुरुषार्थ है क्रोध चांडाल का शस्त्र है। क्षमा वीर का शस्त्र है। क्षमा की प्रज्वाला के समक्ष कठोर से कठोर पत्थर दिल भी पिघल जाता है।

क्रोधी के सामने क्रोध मय उत्तर देना मूर्खता और निम्न वृत्ति है। किसी में अधिक क्रोध देखकर घबराना नहीं चाहिए, क्योंकि जिसमें जितना अधिक क्रोध है वह उतना ही अधिक क्षमा रखने का विशेष अवसर देता है।

क्रोधी का क्रोध या उसके ये दुर्गुण उसको कोपमय हित शिक्षा देने से दूर नहीं होते, किन्तु उत्तम क्षमा, विनय एवं सज्जनता पूर्ण व्यवहार रखकर तुम उसे सुधार सकते हो। विशेष क्रोधी को तुम्हें विशेष उपकारी मानना चाहिए। क्योंकि वह क्षमा के लिए अधिक अवसर देता है। वह तुम्हारा परीक्षक है तुम उसके विद्यार्थी हो। परीक्षा के समय कठिन प्रश्न उपस्थित होने पर जैसे विद्यार्थी घबराता नहीं है और क्रोध करता है, किन्तु शांति से उत्तर देता है। इसी प्रकार तुमको भी क्षमा की परीक्षा के समय शांति रखना चाहिए।

क्रोधी रोगी है। उसकी सम्हाल रखनी चाहिए। तथा उसे दवाई देना चाहिए। उसमें शांतिमय बर्ताव करना यह भी सम्हाल रखने के समान है और उस पर क्षमा भाव रखना यह दवा देने के समान है।

क्रोध करके तुम तुम्हारे आत्मा की हानि क्यों करते हो? क्रोध रूप राक्षस की रक्षा करने के लिए क्षमा रूप दैवी गुण का नाश किस लिए करते हो? कृत्रिम वस्तु के लिये क्रोध करके अपने शाश्वत आत्म गुण का नाश क्यों करना चाहिये? केसरीसिंह का विजय करने की अपेक्षा क्रोध पर विजय करना विशेष मूल्यवान है।

संसार में "मित्ती मे सव्व भूएसु" सभी प्राणियों को मित्र मानने वाला किस पर क्रोध करे? जब अपने दांतों तले जीभ आ जाती है और पीड़ा हो जाती है, तब दांत उखाड़े नहीं जाते,

स्पष्ट नीति से शान्ति रहती है। इसी प्रकार तुम भी तुम्हारी क्रोधाग्नि से संसार में शांति रखो। जिसने जीवन में क्षमा एवं शांति के मणियें पिरोये हुए हैं वह स्वयं गुण मय माला स्वरूप आराध्य है। कोई अपने शरीर की सवारी बनाकर उस पर चढ़ाल को चढ़ने नहीं देता तो फिर महा चंडाल क्रोध को अपने ऊपर सवारी क्यों करने दी जाय और जिस प्रकार हाथी अपने ऊपर रखे हुए हैं पसे (अम्बारी) से अपनी शोभा मानता है इसी प्रकार अज्ञानी महा चंडाल क्रोध से अपनी शोभा में अधिकता मानता है, और उसकी खुशामद करके उसको आमन्त्रण देकर अपने पर सवारी कराके अपने आपको कृतार्थ मानता है। क्रोध करना यह अपनी नास्तिकता का परिचय कराने के समान है। आस्तिक प्राणी तो प्राणों का लोभ छोड़ कर भी क्षमा की रक्षा करता है। क्षमा युक्त एवं शांति मय वचन योजना यह हीरे और मोती की प्रभावना करने की अपेक्षा कहीं अधिक मूल्यवान है।

अग्नि की गोद में तीक्ष्ण कांटे भी राख हो जाते उसी प्रकार कषायी जीव भी क्षमावान के पास मुलायम रेशम बनता है। क्रोध राक्षसी प्रकृति है। क्षमा यह दैवी प्रकृति है। अग्नि कदाचित् किसी वस्तु को जलावे किन्तु क्रोध को एक बार बुलाओगे तो वह कुत्ते के समान बार २ आयेगा। तुम्हारे शरीर को क्रोध के दावानल में से निकाल कर क्षमा के शीतल सरोवर में रखो। कारण कि क्रोध के साथ ही साथ ईर्षा, द्वेष, अभिमान, अनुदारता, निर्दयता, कठोरता, हठीला स्वभाव आदि अनेक दुर्गुणों का हमला होता है।

क्षमा—

क्षमा में ही सच्ची वीरता का समावेश होता है। यही सत्य दान है। अन्यदान तो पुद्गल के दान हैं किन्तु क्षमा सर्वोपरि आत्म शक्ति का दान है। पशु का धर्म हिंसा करने का है और मनुष्य का धर्म अहिंसा करने का इसी प्रकार पशु का स्वभाव क्रोध करने का और मनुष्य का स्वभाव क्षमा करने का है। क्षमा याचक आत्म-कल्याण का परम इच्छुक है और वह क्षमा के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर देता है और क्षमा धर्म की रक्षा करता है। सच्चा क्षमा धारी अपने निमित्त किसी को भी क्रोध न करना पड़े इसकी पूरी सावधानी रखता है। क्षमा के कितने ही अवसर गँवाये, अब यह विचार कर अपनी योग्यता का विचार करो। क्रोधी के क्रोध मय वचन शांति भाव से सहन करना यह परम सेवा है। क्षमा भाव रखना यह साधुता का लक्षण है। क्षमा रखना शत्रु से वैर लेने का उत्तमोत्तम उपाय है।

क्षमावान सच्चा भाग्य शाली है। क्षमा के प्रकाश से उस का हृदय प्रकाशित होता है। क्षमा हाथ में की तलवार है और क्रोध हाथ में से छूटी तलवार है। क्षमा के अभाव में विवेक और ज्ञान का भी अभाव होता है। पानी के पास अग्नि का जोर नहीं चलता, वैसे क्षमावान के पास क्रोधी का जोर नहीं चलता है। वह तो उसे अपने क्षमा बनाने के लिये भाग्यशाली बनता है।



१७—मान-विनय

मान—

मान यह आठ फणा वाला सर्प है। आठ प्रकार के मद ये इसके फणा हैं। अविवेक और द्वेष से मान का जन्म होता है। मान की माता अविवेकता और बाप द्वेष गजेन्द्र है।

जीव मान की मित्रता में इतना जकड़ जाता है कि उसकी दुर्जनता को भूल कर उसको परम स्नेही सज्जन के समान मानने में आता है। मान की मित्रता से अयोग्य आत्मा अपने आप को योग्य एवं मूर्ख अपने आपको विद्वान मानता है। मान मित्र के सहयोग से मनुष्य अपनी दृष्टि ऊँचा रखता है। मान मित्र का त्याग करने की सलाह देने वाले सज्जन को वैरी मानता है। मानी के लिए मानना मन ठीक उसी प्रकार है जैसे कौए की गरदन में चिन्तामणि रत्न बांधना।

मान मीठा विष है अपमान कटु विष है कटुक विष की अपेक्षा मधुर विष विशेष भयंकर है। राज्य पाट त्यागने वाला भी मान के दलदल में फँस जाता है। मनुष्य का अपमान उसी समय होता है जब वह अपना परम पद-परमात्म पद त्याग कर अपमान पाने के लिए तैयारी करता है। ऐसे साधन अपने पास उत्पन्न करता है।

अहंकारी का आदर कोई नहीं करता है। अपने में दान, शील तप, भाव आदि गुण हैं ऐसा भान होना भी अहंकार है। जैसे निरोगी को स्वशरीर का भार अनुभव में नहीं आता उसी प्रकार सद्गुणी, नम्र को भी अपने सद्गुणों का भान नहीं रहता।

दूसरे का अपमान करना यह अपना अपमान करने के समान है। सूर्य के सामने धूल फेंकने के समान है। मान अपमान के मात्र दो ही शब्दों में भान होना इससे विशेष अन्य गुलामी क्या हो सकती है? अपमान धिक्कार के योग्य है। इससे विशेष अपमान का अपमान मानने वाला धिक्कार के योग्य है।

मान से उत्पन्न एक ईर्षा रूप पिशाचिनी उत्पन्न होती है। अग्नि से काष्ठ का नाश होता है इसी प्रकार मान से आत्म गुण का नाश होता है। मानी अपनी एक आंख फोड़ कर दूसरे की दोनों आँखें फोड़ने जैसी प्रवृत्ति करता हुआ अनुभव में आता है अवलोकन करने से आत्म ज्ञान रहित मनुष्य की प्रवृत्ति बाग बगीचा, हाट, हवेली गाड़ी, घोड़ा, मोटर, आभूषण विशाल प्रासाद सौभाग्य प्रभावना, दान आदि तमाम शुभ एवं अशुभ प्रवृत्तियों में मान के परमाणु अनुभव करने में आते हैं

विनय—

विनय शील सदा शांति भोगता है। मानी के अन्त करण में सदा ईर्षा और क्रोधादि कषाय अग्निवत् सिलगते रहते हैं विनयी को सब संयोगों में विजय प्राप्त होती है विनयी मान के संयोगों से दुःख मानता है, एवं लघुता में ही अपनी प्रगति करता है

सज्जन में विनय हो तथ दुर्जन में मान की मात्रा होती है सज्जन तथा दुर्जन की परीक्षा नम्रता तथा उद्धता से हो सकती है। नम्रता की छाया सहनशीलता है, उद्धता की छाया कषाय है।

जहां नम्रता है वहीं अहिंसा है। जहां मान है वहां हिंसा है। नम्र को अपनी नम्रता का मान नहीं होता। मैं कुछ हूं ऐसा मान होने से ही नम्रता का नाश होता है। नम्रता अर्थात् आत्यन्तिक अहंभाव का अभाव। नम्र अपने को रजकण से भी तुच्छ मानता है। अपने पने का नाश ही नम्रता सज्जन की विभूति है। अहंता दुर्जन की विभूति है। सज्जन नम्र विनयी होता है तभी विश्व उसके चरणों पर पड़ता है। विनय और नम्रता सद्गुण रूप तथा अहंता एवं अविनय दोष रूप समझा जाय तो भी अनेक पापों से बचा जा सकता है। मन्दमद में अविनय एवं उन्मत्तता है। विनय रूप समुद्र को सर्व गुण रूप नदियां वहती हैं और अविनय के समुद्र में सर्व क्रोध रूप नदियां एकत्र होती हैं।



१८—माया

माया विचारती है कि मोहराजा की सेना में सभी पुरुष हैं। किन्तु मैं ही मात्र अबला हूं। तो भी तमाम मोहराजा की सन्तानों में मैं मेरे क्रोधादि भाइयों की अपेक्षा कन्या रूप अधिक बलवान् हूं। मेरे जैसी शक्ति मेरे किसी भी भाई में नहीं है। समभाव और सरल स्वभाव ये दोनों मेरे अनादि वैरी हैं। इनका नाश किये बिना मुझे क्षणमात्र भी चैन नहीं पड़ती। मात्र इनके नाश के लिए यह रात दिन प्रयत्न करती है।

सीधी लकड़ी मंदिर की चोटी पर ध्वजा दंड रूप में शोभा देती है। और टेढ़ी लकड़ी जलाने के काम में आती है। इसी प्रकार प्रकृति की सरलता दोनों लोकों में सुख देती है। वक्रता-माया कपट से दोनों लोकों में दुःख मिलता है तथा दूसरों को भी साथ में दुःख मिलता है।

क्रोधी के सामने क्रोध, मानी के प्रति मान मायावी के प्रति कपट करना यह विश्व में दुष्टता की अधिकता करने के समान है। किन्तु क्रोधी के प्रति क्षमा मानी के प्रति विनय कपटी के प्रति सरलता रखना ही विश्व में सज्जनता का बढ़ाना है। कपटी मनुष्य की गति, स्वर बोली, रीति नीति, निद्रा, संस्थान और संवयण आदि पशु की शोभे उसे होते हैं और मरने के पीछे वे पशु पर्याय को प्राप्त करते हैं।

लोभ—

११ वां गुण स्थान वाले को क्रोध मान, माया आदि गिराने में अधिकर करने में समर्थ नहीं है। किन्तु उसका ऋद्धि सिद्धि उत्पन्न होने से मुक्त के प्राप्त हैं ऐसी लोभ प्रवृत्ति होने से पतन होता है। साधारण लोभ वृत्ति ११ वें गुणस्थान वाले को पतित कर देती है तो फिर दूसरे संसारियों की तो क्या दशा होगी? लोभ—वृत्ति क्षय कर दी जाती तो मोक्ष होता किन्तु उस वृत्ति को उपशांत रखने से पतन होता है।

लोभ और कंजूसाई से शरीर के स्नायु तथा खून बंध जाता है। और वह स्वतन्त्र रीति से वेग पूर्वक नहीं बह सकता। तुम्हारे शरीर के व मन के भी तुम स्वामी नहीं हो तो अन्य किसके स्वामी बनने की इच्छा करते हो? लोभ धन कमाने के सिवाय और कोई सलाह नहीं देता और वह नीति न्याय तथा सन्तोष का त्याग करने की वारम्वार प्रेरणा करता है। लोभी को धन में ही विश्व का तत्व धर्म परमात्म पद और मोक्ष का अनुभव होता है। लोभी धन प्राप्ति में ही अपने जीवन की सफलता मानता है। शास्त्रकारों ने लोभ को सागर तथा आकाश की उपमा दी गई है। सन्तोष ही इस जन्म में तथा परलोक में परम सुखदायी है।

११–लोभ

ग्यारहवें गुण स्थानवर्ती आत्मा को लोभ मान माया गिराने समर्थ नहीं है, परन्तु उसे रिद्धि सिद्धि उत्पन्न होने से 'मुझे यह उत्पन्न हुआ है' इस प्रकार की लोभ वृत्ति होने से उसका पतन होता है। साधारण लोभ वृत्ति ११ वें गुण स्थान वाले को गिराती है तो अन्य की क्या दशा!

लोभ की वृत्ति क्षय की होती तो जीव का मोक्ष हो जाता। उस वृत्ति को उपशान्त रखने होने से जीवों का गहरा पतन होता है।

लोभ और कृपणता से शरीर के स्नायु और लोहू वध हो जाता है और वह पृथक रह नहीं सकता। जो अपने शरीर और मन के स्वामी नहीं हैं वे अन्य किसके स्वामी हो सक्ते हैं? लोभ धन कमाने के अलावा दूसरी सलाह नहीं दे सकता और वह न्याय नीति तथा सन्तोष का त्याग करने की प्रेरणा बारबार करता है। लोभी को विश्व का सार धर्म, परमात्मपद और मोक्ष धन में ही प्रतीत होता है। शास्त्रकारों ने लोभ को महासागर एवं आकाश की उपमा दी है। लोभ का त्याग अर्थात् सन्तोष ही इस भव में और परभव में परम सुख का निधान है।



२० — आत्म संयम

आत्म ज्ञान आत्म दर्शन और [illegible] द्वारा सर्वान्च सत्ता प्राप्त होती है। आत्म विजय [illegible] विजय है। आत्म विजय ही सत्य विजय है। बिना [illegible] गुलाम है। अपने हृदय के [illegible] करें। इन्द्रि और विषय वासना पर राज्यकर [illegible] है। मन पर सत्ता चलाने वाला [illegible] है। अपने आत्म राज्य पर राज्य स्थापने वाला [illegible] करता है। आत्म संयम ही समस्त गुणों की नींव है। [illegible] मानव का आन्त और महान् विजय है। शान्त [illegible] स्थायी सत्ता पर चलेगी। अन्य पर सत्ता [illegible] अपनी आत्मा सत्ता चलाओ। आत्म संयम [illegible] गुणों का प्रभ होता है। अपने दोषों का [illegible] व दूर जाते हैं।

क्रोध पर काबू न कर सको [illegible]। क्रोध आ व सत्य स्वरूप का नाश करता है [illegible] मनुष्य का आय भी घटता है ऐसा वैज्ञानिकों का [illegible] धारण करने से सन्ताप मिट जाते हैं। आत्म [illegible] की उत्पत्ति होती है। बिना [illegible] पर विषय कषा विषय कषाय आत्म गुणों [illegible] जीवन में सदाचार को अधिक [illegible] है। लोकाचार संयोगों में शान्त रह [illegible] विषय कषा स्वाधीन नहीं है वह पशु तुल्य [illegible] है। जो मनुष्य [illegible] पात्र है

२१—व्रत-प्रत्याख्यान

मनुष्य के हृदय में जहाँ तक मिथ्यात्व का आंश कम न हुआ हो, वहाँ तक बाह्य पदार्थों की आसक्ति कम नहीं होती। इस लिए शास्त्रों में मिथ्यात्व की प्रधानता है।

जहाँ तक आत्मा का स्वीकार न हो वहाँ तक व्रत प्रत्याख्यान को बिलकुल अवकाश नहीं है। आत्मा अमर है और आत्मिक गुणों से भरा हुआ समुद्र मेरे पास ही है, ऐसा दृढ़ निश्चय न हो वहाँ तक प्राप्त भोगों की ममता छोड़ने का दिल नहीं होता। जहाँ तक आत्मिक गुण की प्रतीतिरूप दृढ़ नींव पर व्रत प्रत्याख्यान की इमारत न खड़ी की जाय वहाँ तक वह इमारत ठीक नहीं हो सकती। आत्म सुधार की भावना जितने अंशतः मजबूत होती है इतने ही अंश में व्रत भी दृढ़ और कार्यकर बन सकते हैं। जहाँ तक मिथ्यात्व के तत्व द्वारा वहाँ तक व्रत प्रत्याख्यान के उपदेश का असर नहीं हो सकता। रेत की नींव पर की हुई चुनाई अधिक नहीं ठीक सकती। जहाँ तक सम्यक्त्व भावना रूप शीशा आत्म विकाश की इमारत की नींव में डाला न जाय वहाँ तक त्याग, प्रत्याख्यान यथार्थ समझने चाहिए।

व्रत प्रत्याख्यान बाह्य स्थिति के आधार तत्व नहीं है किन्तु अन्तर अवस्था का प्रदर्शन कराने वाला है। व्रत प्रत्याख्यान शत प्रति शत आत्मा की अन्तर स्थिति है। बाह्य वेष को क्रिया काण्ड या व्रत प्रत्याख्यान मानने वाले भूल भूल करते हैं। विश्व के अन्य तत्व दूसरी वस्तुओं की तरह व्रत प्रत्याख्यानों में भी विकृति का मडन प्रविष्ट हुआ है।

मानव के शारीरिक या आध्यात्मिक मार्ग में त्याग प्रत्याख्यान की परम प्रधानता रही हुई है। और त्याग प्रत्याख्यान ही व्यक्ति

समाज, प्रान्त देश तथा विश्व का परम कल्याण कर सकते हैं। यथा श्रेय पतन है।

त्याग—प्रत्याख्यान के नियम सिर्फ त्यागी वर्ग के लिए नहीं है पर तु जिसको अपने सत्य हित की कुछ भी दरकार है उन सब का सर्जन करने योग्य है। मछली पानी बिना और भोगी भोग बिना तड़फ कर मरते हैं, वैसे आत्मार्थी व्रत प्रत्याख्यान के अभाव में या उसके भंग में मृत्यु का शरण लेते हैं। अनेक महासतियों ने और सुदर्शन जैसे धारक रत्नों ने व्रत प्रत्याख्यान की रक्षा के लिए शूली को सुख शय्या समझ कर सहर्ष स्वीकार किया। स्कन्धक सन्यासी के सात सौ शिष्यों ने प्राणों की रक्षा के लिए गंगा नदी की शय्या रेत में अपने प्राण दिये। अरणक की माता ने अपने पुत्र को पत्थर की शिला पर पिघल जाने पर भी व्रत रक्षा करने की सलाह दी। इसके अतिरिक्त महाराज स्कन्धकों के पांच सौ शिष्य गजसुकुमार धर्म रुचि अणगार आदि अनेक महापुरुषों ने व्रत रक्षा के लिए अपने प्राण दिये हैं और सिर देकर अपने शील (व्रत) की रक्षा की है। लश्कर के सिपाही पाव भर आटे की लालच में तोप बन्दूक, मशीनगन, वस्त्र के सामने खुली छाती से डटे रहते हैं तो आत्मसुख के अभिलाषियों को अपने व्रत प्राप्ति के लिए कितना महान् आत्म भोग देना चाहिये यह सहज समझा जा सकता है।

मनुष्य व्रत—प्रत्याख्यान के अभाव में व्यक्ति, कुटुम्ब, समाज देश या प्रजा का कल्याण नहीं कर सकता है। त्याग प्रत्याख्यान की विशेषता के प्रमाण में वह अच्छे से अच्छा गृहस्थाश्रम चला सकता है, अन्यथा गृहस्थाश्रम चलाने में असमर्थ होता है। संयमी जीवन के अभाव में मनुष्य गृहस्थ जीवन में भी पतित होता है

सन्तान के श्रेय के लिए मात पिता का त्याग और आत्म भोग सुप्रसिद्ध है। त्याग के कारण ही मातृ पितृ पद निभ रहा है— अन्यथा स्थान भ्रष्ट हो।

त्याग—प्रत्याख्यान के शरण बिना उत्तम गृहस्थ भी नहीं हो सकते हैं तो त्यागी कैसे हो सकते हैं? भोगोपभोग के प्रति संयम रखने से ही आदर्श गृहस्थ धर्म या त्यागी धर्म पलता है।

कुटुम्ब भावना से आगे समाज, देश और विश्व भावना के लिए क्षेत्र के प्रमाण से विशेष त्याग-प्रत्याख्यान की आवश्यकता है। वर्तमानमें त्याग-प्रत्याख्यान का अर्थ अति संकीर्ण और कत्तव्य प्रदेश में प्राय निरुपयोगी जैसा हो गया है। खान पान तथा आने जाने की मर्यादा में व्रत-प्रत्याख्यान मान लिए जाते हैं, परन्तु जिसका असर जीवन के प्रत्येक प्रदेश और प्रवृत्ति में हो वही सच्चा त्याग है। जिस त्याग का फल प्रत्यक्ष नहीं है, परोक्ष में मिलेगा यह आशा निरर्थक है। भविष्य में फल प्रद होने वाले प्रत्येक कार्य वर्तमान में भी उसकी आगाही दिये बिना नहीं रहते। जिस त्याग का परिणाम वर्तमान जीवन पर नहीं पड़ता और आचार विचार पर जरा भी असरनहीं करता उसके सेवन से मनुष्य कुछ भी उदार उच्चाशयी या निष्कामी नहीं होगा। वह त्याग बिना समझ का या रूढ़ि पूर्ण समझना चाहिये। यह भूल न सुधरे वहां तक त्याग प्रत्याख्यान कष्ट मात्र है। इससे कोई उत्तम फल की आशा नहीं रहती।

त्याग—प्रत्याख्यान के प्रताप से मनुष्य पशु से आगे बढ़ता है और जितने अंश में त्याग प्रत्याख्यान बढ़ाता है, इतने अंश में वह विशेष रूप से शुद्ध मनुष्य बनता जाता है और मानवता के गुणों को विकसित करता है।

त्याग प्रत्याख्यान आत्मा की पांख हैं। जिस के द्वारा वह योग्य दिशा में आकाश गमन कर सकता है। इसके अभाव में मृत्यु लोक में विषयी कीड़ा बनकर पेट घीस कर जमीन पर रेंगता है। और पदपद पर पश्चात्ताप व शोक करता है। त्याग प्रत्याख्यान के अभाव में अपने कामनाओं की प्रबल इच्छा होती है। और भोगोपभोग के लिए पशु को भी लज्जित कर ऐसी धूम मारता है। इससे क्रमशः मृत्यु पहिले ही वह आधे पशु बनता है और भोग वासनाओं को पूरा करने के लिए मृत्यु के बाद पूरा पशु बनता है। पशु या मानव मां बाप का अपनी सन्तान के लिए त्याग या आत्मभोग महर्षियों के त्याग से भी अधिक है। सन्तान के जीवन में अपना जीवन और सन्तान के मरण में अपना मरण मानते हैं। आन्तिम श्वासों श्वासतक सन्तान के श्रेय की चिन्ता करते हैं। खान पान और भोगोपभोग में सन्तान के श्रेय के लिए शुद्ध और सादगी का जीवन बीताते हैं और विशेष में इस लोक के सुख की परवाह तो नहीं करते, परन्तु परलोक के सुख को धर्म नीति और न्याय को भी लात मार कर सारा जीवन का ध्येय सन्तान की सेवा बनाते हैं।

२२-चारित्र

आत्मा के निजी स्वरूप में चलना सो चारित्र है। मनुष्य चाहे जैसा अपना चरित्र बना सकता है। साधु श्रावक वर्ग की स्थापना चरित्र शुद्धि के लिये ही है। नवप्रत्याख्यान चारित्र बनाने का हथियार है। जैन दर्शन चारित्र विकसित करने की शाला है। शरीर सुधारने के लिये जैसे दवाखाने और डाक्टर हैं, वैसे ही जीवन सुधार ने के लिये धर्म स्थानक और धर्मगुरु हैं। चारित्र अपने तनमन की अवस्था मात्र है।

सबल और निबल मनुष्य में यही अन्तर है, कि सबल अपने चारित्र को इच्छानुसार बना सकता है और निबल आस पास के संयोगों के आधीन हो जाता है। उसे कोई गुस्से भी कर सकता है और खुश भी कर सकता है उसका मन मोमकी तरह नर्म और संयोगों के आधीन होता है। वह अपने मनका मालिक नहीं है परन्तु संयोगों के आधीन पामर प्राणी है।

आत्मा मन का मालिक है। जसे व्यायाम से शरीर को सुदृढ़ बनाया जाता है, वैसे ही आत्मा मन को बलवान और उत्तम बना सकता है।

जिनके चारित्रको सैकड़ों प्रकारसे सुधारना बाकी है ऐसे मनुष्य भी दूसरों को सुधार की सलाह देने लग जाते हैं। जैसी सलाह वे दूसरे को देते हैं, यदि वैसा बर्ताव वे खुद करें तो वे स्वयं शीघ्र सुधर सकते हैं। मगर सलाह देने वाले को अपनी सलाह में ही विश्वास नहीं, तो दूसरों को उसकी सलाह में विश्वास या सन्मान कैसे उत्पन्न हो सकता है? बिना गोली की बन्दूक कितने ही

प्रयाग करें तो भी वह आवाज पत्ते को भी नहीं तोड़ सकती, वैसे ही बिना चारित्र का उपदेश असर नहीं करता।

बिना खाद व पानी के पौधा मुरझाता है, वैसे ही वासनाओं को विषय पोषण मिलता न हो तो वे मर जाती हैं। सिर्फ एक वक्त वासना के गुलाम बनें तो अनन्त काल तक उसकी विजय रहेगी। और एक वक्त वासनाओं को हरा दी तो सदा के लिए आप की विजय रहेगी। कई मनुष्यों को अधम वासना के सिवाय चैन नहीं होता, इसी प्रकार ऐसा अभ्यास किया जा सकता है कि समता के बिना चैन न पड़े।

चिन्तन से रस (तन्मयता) प्राप्त होता है और कार्य करने से श्रद्धा प्राप्त होती है बिना कार्य के मात्र दृष्टान्त दलील और वांचन से श्रद्धा नहीं आती मात्र कार्य करने पर ही वह प्राप्त होती है। जितनी श्रद्धा अधिक होती है उतनी ही चारित्र की पवित्रता अधिक होती है। श्रद्धा ही मन रूपी सड़क को साफ करती है, प्रतिपक्षी का नाश करके सरलता करती है और विघ्नों के प्रसंग में आत्मा को धीर और स्थिर रखती है। श्रद्धा चारित्र की नींव है। भूतकालीन संस्कार और आदतों से चारित्र बनता है चारित्र का परिवर्तन आदतों का परिवर्तन है। आज का सीखा हुआ पाठ समय पाकर दृढ़ होता है यही स्थिती चारित्र की है।

अहिंसा, सत्य क्षमा ब्रह्मचर्य सरलता सन्तोष आदि आदत रूप बनजाय जीवनमें एकाकार हो जाय, इसी लिये इतना विधान फरमाया है और यही सत्य चारित्र है।

३३—आत्म संयम

आत्म ज्ञान, आत्म दर्शन और आत्म चरित्र के द्वारा ही सर्वोपरि सत्ता प्राप्त होती है। आत्म (इन्द्रियों का) विजय ही सर्वोत्कृष्ट विजय है, सत्य विजय है। इसके सिवाय अन्य विजेता क्षुद्र गुलाम हैं। अपने हृदय के बागी प्रदेश पर विजय प्राप्त करें। इन्द्रियों और विषय वासना पर शासन करने वाला ही महाराजा है। अपने मन पर सत्ता चलाने वाला महासत्ताधीश है। अन्त साम्राज्य पर राज्य स्थापने वाला मानव बन सकता है। आत्म संयम समस्त गुणों की जड़ है। आत्म विजय मनुष्य का अन्तिम और महान् विजय है। शांत बनने से सब पर सत्ता चल सकेगी। दूसरों पर सत्ता चलाने की अपेक्षा अपने पर सत्ता चलाना सीखो। आत्म संयम का अभाव है वहाँ सब सद्गुणों का अभाव समझना चाहिये। अपने दोषों का नित्य अवलोकन करने से दोष दूर होते हैं।

अपने क्रोध को वश में रख न सको तो जीभ को तो अवश्य वश रखना सीखो। क्रोध आत्मा के शुद्ध स्वरूप का नाश करता है। क्रोधी मनुष्य का आयुष्य भी अल्प होता है। मौन धारण करने से सब सन्ताप मिटते हैं। आत्म तत्व के नाश से ही विषय कषाय की उत्पत्ति होती है। बिना संयम का जीवन राक्षसी जीवन है। विषय कषाय आत्मगुणों को फांसी देकर मारते हैं। लोकाचार की अपेक्षा उच्च आचारों को विशेष मान देना चाहिये। विषय कषाय के संयोगों में शांत रहें वही स्वतन्त्र है। जो मनुष्य स्वाधीन नहीं है वह पशुतुल्य अज्ञान और दयापात्र है।

२८--जैन धर्म व अजैन संसार

जैन धर्म अनादि काल का है। यह बात निर्विवाद तथा मत भेद रहित है। (लोकमान्य तिलक)

मनुष्यों की उन्नति के लिए जैन धर्म का चारित्र बहुत लाभ दायी है। यह धर्म बहुत असली स्वतन्त्र, सरल और विशेष मूल्यवान है। (डॉ० ए० गिरनाट पेरिस)

कैसे उत्तम नियम और उच्च विचार जैन धर्म और जैन आचार्यों में है। (डॉ० जोहन्नैस हर्टल, जर्मनी)

जैन धर्म ऐसा प्राचीन धर्म है कि, जिसकी उत्पत्ति तथा इतिहास को ढूंढना अति दुष्कर है। (लाला कन्नूमलजी)

निःसंशय जैन धर्म ही पृथ्वी पर सत्य धर्म है और यही धर्म मनुष्य मात्र का आदि धर्म है। (मि० आवे जे ए डाइ मिशनरी)
मैं जैन सिद्धान्तों के सूक्ष्म तत्वों का पूर्ण प्रेमी हूँ।
(मुहम्मद हाफिज सैयद)

मुझे जैन तीर्थंकरों की शिक्षा के लिए अतिशय भक्ति है।
(नैपालचन्द)

मुझे जैन सिद्धान्त का अत्यन्त शौक है कारण कि कर्म सिद्धान्तों का इस में सूक्ष्म रीत्या वर्णन किया है।
(एम० डी० पाण्डे, थियोसोफिकल सोसायटी)

महावीर ने एक आवाज़ से हिंद में ऐसा सन्देश फैलाया धर्म सांप्रदायिक रूढ़ी नहीं है, परन्तु वास्तविक सत्य है।
(रवीन्द्रनाथ टागौर)

जैन धर्म की उपयोगिता को सब रूपण पाश्चिमात्य विद्वानों को स्वीकारना चाहिए। (डॉ० जौली प्रोफेसर जमनी)

भारत वर्ष में जैन धर्म की प्रधानता रही वहाँ तक उसका इतिहास स्वर्णाक्षरों से लिखन योग्य था।

जिनेश्वरों ने उपदेश दिया है उसे ध्यान पूर्वक सुनो। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि, संसार के सर्व मनुष्य उनके उपदेश अनुसार अपना जीवन व्यतीत कर। (श्रीमती एनी बीसेन्ट)

जैन धर्म के श्रावक तथा मुनि दोनों का चरित्र मनुष्य मात्र के लिए आदर्श रूप है। (गंगाप्रसादजी एम ए)

मैं आपको कहाँ तक कहूँ ? बड़े २ प्रसिद्ध धर्माचार्यों ने अपने ग्रन्थों में जैन धर्म का खंडन किया है,वह ऐसा है कि, उसे देखकर हास्य आता है। स्याद्वाद का यह (जैन धर्म) अभेद्य किल्ला है। उसमें वाद विवाद करने वालों का माया मय गोला प्रवेश नहीं कर सकते। एक दिन ऐसा था कि जैन धर्माचार्यों के प्रवचन से सब दिशाएँ गूँज रही थीं। जैन दर्शन वेदान्त दर्शन से भी प्राचीन है, ऐसा मानने में मुझे कोई हर्ज नहीं है।

(प० स्वामी राममिश्रजी शास्त्री)

ब्राह्मण धर्म को जैन धर्म ने ही अहिंसा धर्म बनाया। हिन्दू धर्म में जैन धर्म के प्रताप से ही मांस भक्षण तथा मदिरा पान बन्द हुआ। (लोकमान्य तिलक)

गरीब प्राणियों का दुःख दूर करने के लिए जमनी में अनेक संस्थाएँ वर्तमान में चल रही हैं, परन्तु जैन धर्म यह कार्य बहु

काय हजारों वर्षों के पहिले से ही करता आ रहा है।

(मि० जोहन्स हटल, जर्मन)

जैनधर्म में अहिंसा तत्व अत्यन्त श्रेष्ठ है।

(रा० गोविंद आप्टे बी० ए०)

जैन धर्म के महत्व पर मेरी हार्दिक श्रद्धा है।

(गंगाप्रसादजी मोदवा एम० ए०)

मेरे चित्त में जैन धर्म प्रति अत्यन्त आदर है। पूर्व कालीन स्थिति में हिंदू समाज में अनेक बुराइयाँ आ घुसी थी। जिसका सुधार जैन धर्म ने ही किया है। जैन धर्म में अहिंसा का यथार्थ स्वरूप प्रति पादन किया है। जैन राजाओं ने व गृहस्थों ने महान् पवित्र काय किए हैं, और महान् विजय प्राप्त किये हैं। जैन धर्म की शिक्षा से सामाजिक जीवन भी पूर्ण हो सकता है। हिन्दू मात्र को जैन धर्म का कृतज्ञ होना चाहिए, चूंकि इस धर्म ने हिंदू समाज की अनेक बुराइयों का संशोधन किया है।

(प्रो० चतुरसेन शास्त्री)

जैन धर्म सुख और शांति प्राप्त करने का साधन है। भगवान् महावीर का उपदेश ज्ञान मय तथा चारित्र सुधारने वाला है प्राणी मात्र पर दया का सिद्धांत अमूल्य सिद्धांत है।

(फणीभूषण एम० ए०)

अन्तिम निवेदन



अध्यात्म रसिक आत्मार्थी मुनि श्री मोहन ऋषिजी म० सा० व विवेक सम्पन्न मुनि श्री विनय ऋषिजी म० सा० भ्रातृद्वय को जैन मात्र भली प्रकार जानते हैं। सिर्फ ऋषि सम्प्रदाय के ही नहीं समस्त जिनशासन के आप हितचिंतक और शासन शृंगार हैं। श्री बृहत्साधु सम्मेलन अजमेर के समय की आपकी सेवाएं भी खास उल्लेखनीय और प्रमुख थीं।

आपके विचार बड़े मनन, चिंतन और अध्यात्मानुभव के साथ प्रकट होते हैं। स्व० पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी म० सा० का सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'जैन तत्त्व प्रकाश' का गुजराती अनुवाद में स्थान २ पर फुट नोट देने के लिए आत्मार्थीजी ने कुछ विचारों को लिपिबद्ध किये थे, जिनको 'जैन प्रकाश' ने जैन तत्त्वोंनु नूतन निरूपण' के हेडिंग से नीचे गुजराती में प्रकट किया था।

यह नूतन निरूपण नूतन युग के विचारकों को बहुत उपयोगी मालूम पड़े और पुस्तकाकार साहित्यरूप में प्रकट करने का आग्रह हुआ। अतः दानवीर सेठ सरदारमलजी सा० पुंगलिया ने हिंदी में छपवाने की अपनी हार्दिक भावना प्रकट की और इसका अनुवादन आदि कार्य के लिए मुझे कहा गया।

मैं चाहता था कि ऐसा उत्तम स्थायी साहित्य हिन्दी के प्रखर लेखक के द्वारा प्रकट हो, परन्तु पुस्तक शीघ्र प्रकाशित करनी थी अतः अनुवादन कार्य मुझे करना पड़ा। शीघ्रता के कारण अनेक त्रुटियाँ होंगी। पाठकगण उसे क्षमा करें और आत्मार्थी जी के भावों की महत्ता समझकर अपना जीवन सुधारें।

धीरजलाल के. तुरखिया